

प्रभाकर परीक्षा की सहायक पुस्तकें

प्राचीन गद्य की कुर्जी

इसमें प्राचीन गद्य में दिये गये गद्य शैली के कठिन शब्दों का अर्थ प्रत्येक लग्नक की लग्न शैली पर विचार तथा उसका साहित्य में स्थान बड़े विस्तार से दशाया गया है। शुद्धता, तथा स्पष्टता के लिए हिन्दी भवन लाहौर का नाम ही पर्याप्त है। मू० ॥१॥)

नवनिधि की कुर्जी

(लेखक—श्री शमुदयान सकमेना साहित्यरत्न)

इसमें नवनिधि के सत्र पद्यों के कठिन शब्दों के अर्थ बड़ी सरल भाषा में विस्तार पूर्वक दिये गये हैं। प्रसंगवश आने वाली कहानियाँ तथा कवियों की शैली पर आलोचनात्मक विचार देकर विद्वान लेखक ने पुस्तक की महत्ता बढ़ा दी है। श्री शमुदयान जी कुर्जियों लिखने में अपना सानी नहीं रखते। उनकी लिखी यह कुर्जी शुद्धता, स्पष्टता आदि में अद्वितीय है। मूल्य ॥१॥)

प्रभाकर प्रश्नपत्र आदर्श उत्तर सहित

[स० देवचन्द्र विशारद]

इसमें मन् १९३४ से आजतक के प्रश्न संगृहीत हैं। विद्यार्थियों की सुविधा के लिए १९३६ से आजतक के प्रश्न के उत्तर भी दिए गए हैं। उत्तर प्रामाणिक हैं। मूल्य २॥

हिन्दी भवन, लाहौर

प्रभाकर परीक्षा की सहायक पुस्तक

आलोचना-समुच्चय

(छपन—श्री रामदास शुक्ल एम ए 'गिरीमुख'
प्रोफेसर, महाराजा कालिज, जयपुर)

इसमें विद्वान लेखक ने हिन्दी के प्रायः सत्र प्रमुख महाकवियों—
कबीर, सूर, जायसी, तुलसी, मीरा, केशव, विहारी, भूपण,
हरिश्चन्द्र, मैथिलीशरण और प्रसाद—पर गभीर आलोचनात्मक
निबंध लिखे हैं, जिनमें कवियों के काव्य, और उनकी विशेषताओं
पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है, तथा कवियों की मनोवैज्ञानिक
प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया गया है। विश्वविद्यालयों की
उच्च कक्षा के विद्यार्थियों, विशेषतः प्रभाकर के परीक्षार्थियों के
लिए आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य पुस्तक। पृष्ठ २६०—
मूल्य २)

छन्द-रत्नावली की कुजी

इसमें छन्द रत्नावली में आठ सत्र छन्दों को सरल और सुबोध
भाषा में समझाया गया है। मूल्य १/२) मात्र।

हिंदी भवन, लाहौर

प्रभाकर परीक्षा की सहायक पुस्तकें

प्रथम-प्रभाकर

(दमरा सम्करणा)

[हे०—श्री गुलाबराय एम० ए०]

इस पुस्तक में १९२४ से लेकर अब तक के प्रभाकर परीक्षा में आये हुए निबन्ध दिए गये हैं। साथ ही कुछ अन्य साहित्यिक लेख भी जोड़ दिये गये हैं। निबन्धों की भाषा, सरल होन पर भी परिष्कृत है, जो कि विद्यार्थियों के लिए आदर्श पढ़ी जा सकती है। मू० १॥१)

मुद्राराक्षस नाटक सटिप्पण

(स०—श्री धर्मचन्द्र विशारद)

(तीमरा सम्करणा)

विद्यार्थी उपयोगी सुभाषित सम्करणा । इसमें सब पद्यों के अर्थ, नाटक के पात्रों का परिचय, नाटक की आलोचना, नाटक सम्बन्धी परिभाषाएँ, भारतन्दु हरिश्चन्द्र की विस्तृत जीवनी तथा उनकी अन्य रचनाओं का सक्षिप्त परिचय भी दिया गया है। विद्यार्थियों के लिए यह सर्वोत्तम सम्करणा है। इसक लेने पर अन्य किसी सहायक पुस्तक की आवश्यकता नहीं रहती। पुस्तक लेते समय श्री धर्मचन्द्र विशारद का नाम दस लें। मूल्य पयल १)

हिन्दी भवन, लाहौर

प्राचीन गद्य

सम्पादक—

सन्त गोपुलचन्द्र

हिन्दी भवन

लाहौर

दूसरा

जून १९३६

चन्द्रगुप्त त्रिपालकार

विश्व साहित्य ग्रन्थमाला

हम्पताल रोड, लाहौर

प्राचीन-गद्य की कुंजी

संपादक—देवचन्द्र विशारद

इसमें प्राचीन-गद्य में दिये गये प्रत्येक लेख पर फठिन शब्दों के अर्थ तथा सन्नेप और लेखक की लेखनशैली पर विचार तथा उसका साहित्य में महत्त्व बड़े विस्तार से दिया गया है शुद्धता तथा स्पष्टता के लिए 'हिन्दी भवन, लाहौर' का नाम ही पर्याप्त प्रमाण है।

मूल्य ॥१॥

मुद्रक—

लाला प्रकाशचन्द

विरजानन्द प्रैस

मोहनलाल रोड, लाहौर

विषय-सूची

	पृष्ठ
१ प्रारम्भिक शब्द— (दिव्यी उत्पत्ति का इतिहास)	१
२ गोसाईं गोपब्रह्मनाथ	३६
३ लक्ष्मणलाल	२५
४ सैयद इशाअल खाँ	१६६
५ मन्ल मिश्र	२०१
६ राजा शिवप्रसाद	२१७
७ राजा लक्ष्मणामिह	२४५
८ स्वामी दयानन्द	२६१

दो चार प्रारम्भिक शब्द

हिन्दी-उत्पत्ति का इतिहास

संसार परिवर्तनशील है। उसकी प्रत्येक वस्तु अनादि काल से अदल बदल रही है। किसी वस्तु की सत्ता के इतिहास सम्बन्धी योज करने से पता लगेगा कि जो रूप उसका वर्तमान में है पहले उसका वह रूप न था, तथा इस रूप में आने से पूर्व उसे अनेकानेक रूप बदलने पड़े होंगे।

मनुष्य की आकृति को ही लीजिए। डार्विन के सिद्धान्त के अनुसार उसमें कितना परिवर्तन होकर यह आकृति बनी है। कहीं घनदर और कहीं मनुष्य। कितना अन्तर है।

जो सिद्धान्त अन्यान्य पदार्थों में लागू है, भाषा में भी वही लागू है। उसका इतिहास जटिल तो है सही, परन्तु चित्ताकर्षक और मनोरञ्जक भी है। जो भाषा जितनी प्राचीन होती है उममे उलट फेर भी अधिक होते हैं।

भारतवर्ष की सभ्यता प्राचीनतम है, अतः इसकी भाषायें भी प्राचीनतम हैं। इसी कारण इन्हें विकास सिद्धान्तानुसार क

परिस्थितियों में से गुजरते और परिवर्तन प्राप्त करते यह स्वरूप मिला होगा ।

यह स्मरण रह कि अन्यान्य देश और जातियों के राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक परिवर्तनों का प्रभाव दश और जातियों पर पड़ने के साथ साथ उनकी भाषाओं पर भी पड़ता है । भिन्न-भिन्न जातियों से समर्ग होने पर उनको सभ्यता और आचार विचारों में प्रिनिमय, सघर्ष और आदान प्रदान तो होते ही हैं, साथ ही नकी भाषाओं के मिश्रण से नये नये शब्द बन जाते हैं और कभी कभी भाषा में भी नयापन आ जाता है ।

इस लिए भारत की भाषाओं के प्राचीनतम और वर्तमान रूप में यदि इतना महान् अन्तर हो गया हो तो इसमें कोई विस्मय की बात नहीं । भाषाओं की परिवर्तन गति की समता एक ऐसी नदी से की जा सकती है जो हिमालय के शुद्ध स्रोत से निकल सप्तकोशों का मार्ग पार कर समुद्र में गिरी हो । स्रोत से निकलत ही उसका जो शुद्ध रूप होता है उसकी तुलना उसके उस कल्पित रूप से जो उसका समुद्रपतन के समय होता है—हो सकती है ? उन दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर होता है । यही दशा भाषाओं की होती है । उत्पत्ति के समय उनका जो रूप होता है, वह हजारों वर्षों के बाद नहीं रहता ।

उदाहरणार्थ—संस्कृत को ही लीजिये । समार की प्राचीनतम पुस्तक वेद है । उनकी भाषा और अर्वाचीन काल की संस्कृत

भाषा में कितना भेद है। बीच-बीच में ब्राह्मणग्रन्थों, उपनिषदों, पुराण और आख्यायिकाग्रन्थों की भाषाओं से संस्कृत का विकास किस गति से हुआ है, इसका ज्ञान हो सकता है।

पीछे कहा जा चुका है कि अन्य देश और जातियों के समिश्रण से नयी भाषाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। संस्कृत के साथ भी ऐसे ही हुआ। वैदिक भाषा से संस्कृत उत्पन्न हुई और अनायी के सपर्क से प्राकृत भाषाएँ उनी।

यह तो सर्वसम्मत बात है कि प्रतिदिन के व्यवहार और बोल-चाल की भाषा में जितना शीघ्र परिवर्तन होता है उतना शीघ्र साहित्य की भाषा में नहीं होता। जब उपरोक्त प्राकृत भाषा भी संस्कृत की तरह साहित्य में प्रयुक्त होने लगी तो और शिष्टसमुदाय के पठन-पाठन के ग्रन्थों की भाषा बन गई, तब बोलचाल की भाषा का प्रवाह स्वतन्त्र रूप से अपनी चाल चलता रहा। उम्र के काल-क्रम से कई परिवर्तन भी होत रहे। इस भाषा को 'अपभ्रंश' सजा दी गई। हिन्दी इसी 'अपभ्रंश' की पुत्री मानी गई है।

भिन्न-भिन्न कालों में विकासवश हिन्दी में जो भेद होते रहे हैं तदनुसार इसके मुख्य चार प्रकार हैं—राजस्थानी, अवधी, ब्रजभाषा और लड़ीबोली। एक बुन्देलखण्डी भाषा भी मानी गई है, पर वह ब्रजभाषा के ही अन्तर्गत है।

१—राजस्थानी की चार बोलियाँ हैं—मारवाड़ी, जयपुरी, मेवाड़ी और मालवी।

मारवाडी—मारवाडी का पुराना साहित्य डिगल नाम से प्रसिद्ध है। दादूदयाल और उनके शिष्यों की वाणी जयपुरी भाषा में है।

मेवाती और मालवी में कोई साहित्य नहीं—कम से कम अब तक मिला नहीं। मेवाती ब्रजभाषा से और मालवी बुन्देलखण्ड से बहुत मिलती जुलती है।

२—अवधी—अवधी भाषा का प्रचार अवध, आगरा, बुन्दलखण्ड, छोटा नागपुर और मध्य प्रदेश के कई भागों में है। अवधी की तीन बोलियाँ मानी गई हैं—अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी।

अवधी और बघेली में कोई विशेष अन्तर नहीं, परन्तु छत्तीसगढ़ी पर मराठी और उड़िया का प्रभाव पड़ने से यह अवधी से कुछ भिन्न हो गई है।

३—ब्रजभाषा—ब्रजभाषा शौरसेनी प्राकृत और शौरसेनी अपभ्रंश से निकली है। इसका मुख्य केन्द्र ब्रजमण्डल है, किन्तु इसका प्रचार दक्षिण को ओर आगरा, भरतपुर, धौलपुर और करौली में तथा ग्वालियर के पश्चिमी भाग और जयपुर के पूर्वी भाग में है और उत्तर की ओर गुडगाँव जिले के पूर्वी भाग तक बोलती जाती है।

इसका कन्द्र स्थान मथुरा है और वहीं की भाषा शुद्ध ब्रज भाषा है। इस स्थान से वह जिधर जिधर चली है वहीं वहीं के ससर्ग से इसका रूप में कुछ कुछ विकार होत गये हैं।

४—खड़ी बोली—रड़ी बोली का इतिहास बहुत जटिल और रोचक है। यह भाषा मेरठ के चारों ओर बोली जाती थी, पर भारत में मुसलमानों के आक्रमण और राज्य स्थापन के कारण उन्होंने दिल्ली की भाषा को, जो उस समय उनके शासन का केन्द्र थी, अपनाया। पहले पहल अरब, फारस और तुर्किस्तान से आये हुये सिपाहियों को परस्पर भाव-विनिमय में बड़ी कठिनाई होती थी। न वे यहाँ की 'हिन्दी' को समझते थे और न भारतीय उनकी भाषाओं को। परिणाम वही हुआ जो साधारणतः हुआ करता है। 'दोनों' ने एक दूसरे की भाषाओं में कुछ कुछ शब्द सीख कर किसी प्रकार आदान-प्रदान का रास्ता निकाला। यों मुसलमानों की उर्दू (छावनी) में पहले पहल एक खिचड़ी पकी, जिसमें दाल चावल सब रड़ी बोली के थे, सिर्फ नमक आगन्तुकों ने मिलाया। आरम्भ में तो वह निरी वाज़ारू बोली थी, पर धीरे-धीरे व्यवहार बढ़ने पर और मुसलमानों को यहाँ की भाषा के ढाँचे का ठीक ज्ञान हो जाने पर इसका रूप कुछ कुछ स्थिर हो चला। मुसलमानों ने अपनी संस्कृति के प्रचार का सबसे बड़ा साधन मान कर इस भाषा को सूत्र उन्नत किया और जहाँ फैलते गये वे इस भाषा को साथ लेते गये। उन्होंने इसमें केवल फारसी तथा अरबी के शब्दों की ही उनके शुद्ध रूप में अधिष्ठा नहीं कर दी, बल्कि उसके व्याकरण पर भी फारसी, अरबी व्याकरण का रंग चढ़ाना आरम्भ कर दिया। इस अवस्था में

इसके दो रूप हो गए, एक तो हिन्दी ही कहलाता रहा, और दूसरा उर्दू नाम से प्रसिद्ध हुआ। दोनों के प्रचलित शब्दों को ग्रहण करने पर व्याकरण का मद्देन हिन्दी के ही अनुसार रख कर, अंगरेजों ने इसका तीसरा रूप 'हिन्दुस्तानी' बनाया। अतएव इस समय इस खड़ी बोली के तीन वर्तमान रूप हैं—(१) शुद्ध हिन्दी—जो हिन्दुओं की साहित्यिक भाषा है और जिसका प्रचार हिन्दुओं में है। (२) उर्दू—जिसका प्रचार विशेषकर मुसलमानों में है और जो उनके साहित्य की और शिष्ट मुसलमानों तथा कुछ हिन्दुओं की घर के बाहर की बोलचाल की भाषा है। (३) हिन्दुस्तानी—जिसमें साधारणतः हिन्दी, उर्दू दोनों के शब्द प्रयुक्त होते हैं और जिसका सब लोग बोलचाल में व्यवहार करते हैं। (हिन्दू और मुसलमानों की सार्वदेशिक भाषा के सम्बन्ध में अडचन को मिटाने के लिए हिन्दुस्तानी को ही उस पद पर प्रतिष्ठित करने को आजकल जोर दिया जा रहा है।)

हिन्दी साहित्य विकास

साहित्य ही किसी देश की जनता की मनोवृत्ति का प्रतिबिम्ब होता है। अतः मनोवृत्ति में समय समय पर परिवर्तन आने पर साहित्य में भी वैसा परिवर्तन आता रहता है। इसलिए साहित्य की प्रगति का पूरा ज्ञान नहीं हो सकता जब तक जनता की मनोप्रगति का पूर्ण ज्ञान न हो। हर समय में लोगों में किसी न किसी विचार प्रवाह का प्राबल्य रहता है, अतः उस समय उनकी मनो-

वृत्ति एकनो-मुग्य होकर उधर ही चलती है। इन सय बातों को
वेचार कर विद्वानों ने हिन्दी भाषा क समय को इन चार भागों
में बाँटा है —

आदि काल, (वीरगाथाकाल, सवत् १०४०—१२७४)

पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल, सवत् १३७५—१७००)

उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल, सवत् १७००—१९००)

आधुनिक काल (गणकाल, सवत् १९००—१९८४)

यह समय-विभाग रचनाओं की विशेष प्रवृत्ति क अनुमार
किया गया है, इसका अर्थ यह न समझना चाहिये कि किसी
विशेष काल में दूसरे प्रकार की रचना होती ही न थी। वीरगाथा-
काल म भी कई भक्ति के कविनामन्य मिलेंगे। इसी तरह भक्ति-
काल या दूसरे कालों में भी वीरगाथा पर अच्छे-अच्छे कविनामन्य
मिलेंगे। आशय यह है कि उस समय उस प्रकार की रचनाओं
का बाहुल्य होता था।

यहाँ पर एक बात और घताना आवश्यक है। प्राचीनतम
समय से भी जनता की साहित्यिक भाषा प्रायः पद्यमयी ही रही
है। हमारे प्राचीनतम मन्य वेद पद्य में हैं। इनक अनिरिक्त
अठारहों पुराण, रामायण, महाभारत, स्मृतियाँ आदि सभी
आर्षमन्य पद्य में हैं। हिन्दी क प्राचीनतम मन्य 'पृथ्वीराज रासो'
आदि पद्य में ही हैं।

ईसा के बाद लगभग एक हजार वर्ष तक कोई गद्यमन्य नहीं
उपलब्ध होता।

इसका यह तात्पर्य नहीं कि लोगों की धोलचाल की भाषा भी पशुमयी थी। वे लोग भी धोलचाल में गद्य का प्रयोग वैस ही करते थे जैसे हम करते हैं।

आदि काल (वीरगाथाकाल)

पीछे कहा गया है कि अपभ्रंश से हिन्दी का जन्म हुआ। अपभ्रंश अवस्था से हिन्दी के अभ्युदय का काल सन् १०५० फ लगभग माना गया है।

वह समय ऐसा था कि कवियों को राजाश्रित हो कर अपने आश्रयदाता की वीरताओं का वर्णन करना पड़ता था। बड़ी बड़ी सभाओं में उनकी वीरगाथाएँ पढ़ी जाती थीं। उन्हीं पर कवियों को बड़े-बड़े पारितोषिक वितरणा होत थे।

ऐसा भी मालूम हुआ है कि राजकवि युद्धक्षेत्र में जाकर स्वयं तलवार चलाते थे और सैनिकों को वीरकविताएँ सुना कर उत्तेजित करते थे।

इस काल के कुछ मुख्य कवि ये हैं—सुमानरासो, वीरबल रासो, चन्द बरदाई आदि।

पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल)

भारत में जब मुसलमान राज्य प्रतिष्ठित हो गया तो हिन्दुओं के हृदयों में से आत्म गौरव, अभिमान और दशीयता के भाव उठ गये। इसलिए धीरगीतों व गाने की न उन्हें स्वतन्त्रता थी और न उत्साह था। किन्तु कवि के हृदयोद्गार रुक नहीं सकते।

उन्होंने निकलने का दूसरा मार्ग खोज लिया। उन्होंने भगवान् की ओर मुग्ध किया और उसे ही अपनी विपदाओं का निवारक मान उसकी भक्ति में सान्त्वना प्राप्त करने लगे और वे कर ही क्या सकते थे। हिन्दी का प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवि इसी काल में हुए हैं। उनमें कुछ मुख्य ये हैं—कबीर, गुरु नानक, दादूदयाल, मलिक मुहम्मद जायसी, गोस्वामी तुलसीदास, नाभादास, सूरदास, रसखान, रहीम आदि।

उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल)

इस समय हिन्दीकाव्य पूर्ण प्रौढ़ हो चुका था। उस समय से पूर्व प्रचलित भक्तिकाव्य-गंगा का प्रवाह अब भी लाखों करोड़ों नर-नारियों की ज्ञान-पिपासा को शान्त कर रहा है। तुलसीदास और सूरदास अब भी काव्यनभोमण्डल पर शशी और सूर की तरह देदीप्यमान हैं।

हिन्दी की ऐसी प्रौढ़ अवस्था में इसकी स्वतन्त्र चालों को रोकने के लिए इसे रस, अलंकार तथा छन्द आदि की शृङ्खलाओं में बाँधने की आवश्यकता पड़ी। इसके पूर्व भी स० १५६८ में कवि कृपाराम रस का कुछ निरूपण कर चुके थे। इसके पश्चात् १६१५ में रामभूषण और अलङ्कार-चन्द्रिका नाम की दो पुस्तकें निकलीं। उनमें अलङ्कारों का निरूपण था। इस प्रकार कतिपय और ग्रन्थ भी इन्हीं विषयों पर निकलते रहे, किन्तु रीतिग्रन्थों का अस्पष्ट और अविरल प्रवाह

इसके भी पहले—

१४०७ में गोरखनाथ जी ने 'सिष्ट प्रमाण' नाम का ग्रन्थ गद्य में रचा । इसमें से कुछ अंश दिया जाता है—

“सो वह पुरुष सपूर्णा तीर्थस्नान करि चुकौ अरु सपूर्णा पृथ्वी ब्राह्मणनि को दै चुकौ अरु सहस्र ब्रह्म करि चुकौ अरु देवता सर्व पूजि चुकौ अरु पितरनि को सतुष्ट करि चुकौ स्वर्गलोक प्राप्त करि चुकौ जा मनुष्य को मन छनमात्र ब्रह्म क बिचार बैठो ।”

हिन्दी में यह प्रथम गद्यग्रन्थ उपलब्ध हुआ है । इसलिए गोरखनाथ जी को हिन्दी का प्रथम गद्यलेखक माना गया है । गोरखनाथ जी के शिष्यों के लिखे कई ग्रन्थ ग्रन्थ—गोरखनाथ की बानी, गोरखनाथ क पद, ज्ञानसिद्धान्त योग—आदि मिलत हैं । जिनका निर्माणकाल पन्द्रहवीं शताब्दी का आरम्भ है । उनमें से कुछ अंश नीचे उद्धृत हैं—

“आ गुरु परमानन्द तिनको दण्डवत है । हे कैसे परमानन्द, आनन्द स्वरूप है सरीर जिन्हि को । तिन्हि क नित्य गापतें सरीर चेतनि अरु आनन्दमय होतु है । मैं जु हौं गोरिप अरु मछन्दर नाथ को दण्डवत करत हौं । हे कैसे व मछन्दरनाथ, आत्म जोति निश्चल है अन्तहकरन जिनके अरु मूलहार तैं छह षक जिनि नीकी तरह जानैं ।”

इसके पश्चात् श्री बल्लभाचार्य के पुत्र गोस्वामी विठ्ठलदास

का 'शृङ्गार रम मण्डल' नाम का गद्यग्रन्थ मिला है। इनके गद्य का नमूना यह है—

“प्रथम की सत्तो पहलु है। ओ गोपीजन के चरण विप्रे सेवक की दाम्नी करि तो इनको प्रेमामृत में डुबिकै इनके मन्दहास्य ने जीते हैं। अमृतसमूह ताकरि निकुंज विप्रे शृंगाररस श्रेष्ठ रसना कीनो सो पूर्ण होन भई।”

इन्हीं विठ्ठलदास के पुत्र गोस्वामी गोकुलनाथ के तीन ग्रन्थ सन् १६२५ और १६५० के बीच के बने मिले हैं। उनके नाम हैं—चौरामी वैष्णवों की वार्ता, दो मौं यावन वैष्णवों की वार्ता और वनयात्रा। उदाहरण के लिये नीचे लिखा अंश देखिये—

“सो श्री नन्दगाम में रहतो हतो। सखण्डन प्राज्ञग्य शास्त्र पठ्यो हतो। सो जिनने पृथ्वी पर मन हैं सयको खण्डन करतो, ऐसो वाको नेम हतो याही तें सय लोगन ने वाको नाम खण्डन पार्यो हतो। सो एक दिन श्री महाराज प्रभुजी के सेवक वैष्णव की मण्डली में आयो। सो खण्डन करन लागयो। वैष्णवन ने कही—जो तेरो शास्त्राथ करनो होवै तो पण्डितन के पास जा, हमारी मण्डली में तरे आयथो को काम नहीं। इहाँ खण्डन मण्डन नाही। भगवद्वार्ता को काम है। भगवद्वयश सुननो होवै तो इहाँ आवो।”

इन्होंने अपनी भाषा में ब्रजभाषा के अतिरिक्त अरबी, फारसी, मारवाडी, गुजराती, पञ्जाबी आदि का भी निसङ्कोच प्रयोग किया है।

सन् १६२७ में गग ने 'चन्द्र छन्द धरज्जन की महिमा' नामक पुस्तक लिखी। इसका कुछ उद्धरण ऊपर आ चुका है।

इसके अनन्तर 'भक्तमाल' के प्रणेता नाभादास जी से रचित 'अष्टयाम' मिला है। उसकी भाषा इस प्रकार की है—

‘तत्र श्री महाराज कुमार प्रथम श्री वशिष्ठ महाराज के चरण छुई प्रनाम करत भए। फिरि अपर शूद्र समाज तिनको प्रनाम करत भए। फिर श्रीराजाधिराज जू को जोहार करिवै श्री महदनाथ जी क निकट बैठत भए।’

इसके बाद १६८० में लिखी हुई जटमल कवि की 'गोरा बादल की कथा' गद्य में मिलती है। उसका कुछ अंश उद्धृत है—

“गोरे की आवरत आनसा वचन सुनकर आपने पावन्द की पगड़ी हाथ में लेकर वाहा सती हुई सो सिवपुर में जाके वाहा लोनों मल हुए। गोरानादन की कथा गुरू क यस सरस्वती कू महरथानगी से पूरन भई तिस वास्त गुरू कू व सरस्वती कू नमस्कार करता हूँ।”

स० १६७५ में वा इसक लगभग वैकुण्ठमण्डि ने 'बैशाख महात्म्य' और 'अग्रहन महात्म्य' नाम की पुस्तकें लिखीं। उनकी भाषा इस प्रकार की है—

“एक समय नारद जू ब्रह्मा की सभा तै दृठिकै सुमेर पर्वत को गए। पुनि गगा जी को प्रवाह दति पृथ्वी विषे आए तथा मन तीरथन को दरसन करत भए।”

इन पुस्तकों के अतिरिक्त कई संस्कृत और हिन्दीग्रन्थों की टीकाएँ हिन्दी भाषा में लिखी गईं। उनकी भाषा न परिष्कृत थी और न व्यवस्थित। उनमें अर्थों और भावों को अच्छी तरह प्रकाशित करने की शक्ति न थी। 'शृंगारशतक' के एक श्लोक की भाषा-टीका देखिये।

“अगना जु है स्त्रीसु। प्रेम के अति आवेश करि। जु कार्य करना चाहति है ता कार्य त्रिपै ब्रह्मा ऊ। प्रत्यूह आधातुं। अन्तराउ कीबे कहँ। कातर। काइस है। काइस कहा वै असमर्थ। जु कछु स्त्री कर्यो चाहँ सु अवस्य परहिं। ताको अन्तराउ ब्रह्म पहुँ न करयो जाइ और की कितिक बात।”

यह टीका है इस श्लोक की—

उन्मत्तप्रेमसरम्भादालभन्ते यदङ्गना ।

तत्र प्रत्यूहमाधातु प्रध्यापि रतु कातर ॥

अत्र पाठक स्वयं बतावें कि इस टीका के आधार पर इस पद्य का कुछ अर्थ उनकी समझ में आया ?

रामचन्द्रिका का एक दोहा है—

राघव शर लाघव गति छत्र मुकुट यों हयो ।

हमसबल असु सहित मानहु उडिकै गयो ॥

इसकी टीका देखिए—

“सबल कहँ अनेक रंग मिश्रित हें, असु कहँ किरण जाके ऐसे जे सूर्य हैं तिन सहित मानों कलिंद गिरि शृ गतेँ हस कहे हस

समूह उड़ गयो है। यहा जाति विषे एक वचन है इमन के मन्श श्वेत छत्र है और सूर्यन के मन्श अनेक रङ्ग प्रटित मुकुट है।”

इस प्रकार की गद्यभाषा टीकाओं में मिलती है।

खट्टी बोली का वास्तविक आरम्भकाल मन्श १८१० के लगभग है। उस गद्य को आरम्भ करने वाले ये चार सज्जन थे—मुशी सदासुख लाल, लल्लूलाल, इशाअज्जादी और मदन मिश्र।

मुशी सदासुख लाल—इनका उपनाम नियाज था। ये दिल्ली में रहने वाले थे। इनका जन्म स० १८०३ ई० हुआ था। पहले ये कंपनी के किसी दफ्तर में नौकर थे और १८१० के लगभग किसी अच्छे पद पर पहुँच गये थे। ये अच्छे कवि थे। उर्दू तथा फारसी में उन्होंने कई कविताग्रन्थ लिखे।

जब इनकी आयु ६५ वर्ष की थी तो इन्होंने नौकरी छोड़कर प्रयागवास किया और अपनी जीव आयु वहीं हरिमजन में लगाई। वहाँ पर सन् १८८१ में इनका देहान्त हो गया।

मुशी जी उर्दू और फारसी में अच्छे लेखक थे। पर श्री-भगवत का स्वतन्त्र हिन्दी-अनुवाद लिखकर इन्होंने हिन्दी की बड़ी सेवा की है। यदि वास्तव में देखा जाय तो हिन्दी के आदि गद्य लेखक ये ही हैं। लल्लूलाल और सदानमिश्र की तरह इन्होंने यह पुस्तक न किसी लोभ लालच से और न किसी अधिकारी की प्रेरणा से लिखी है। ये भगवद्भक्त थे और इस पुस्तक के निर्माण से उन्होंने अपनी भक्ति का परिचय दिया है।

इन्होंने मुख्यसागर में हिन्दुओं की उमी बोलचाल की शिष्ट भाषा का प्रयोग किया है जो उन दिनों सर्वत्र प्रचलित थी। जो रूप भाषा का उस समय पद्याचार्यों और संस्कृतपंडितों में प्रचलित था, मुशी जी ने उमी को ही अपनाया। इस प्रकार की संस्कृत-मिश्रित हिन्दी का प्रयोग करने से उन्होंने भावी संस्कृत-साहित्य में प्रयोक्तव्यमान भाषा का पूर्ण रूप दे दिया। उदाहरणार्थ उनकी भाषा का कुछ अंश नीचे दिया जाता है।

“इससे जाना गया कि मस्कार का भी प्रमाण नहीं, आरोपित उपाधि है। जो क्रिया उत्तम हुई तो सौ वर्ष में चाडाल से ब्राह्मण हुए और जो क्रिया भ्रष्ट हुई तो वह तुरत ही ब्राह्मण से चाडाल होता है। यद्यपि ऐसे विचार से हमें लोग नास्तिक कहेंगे, हमें इस बात का डर नहीं। जो बात सत्य होय उसे कहा चाहिए, कोई बुरा मान कि भला माने। बिना इस हेतु पढ़ते हैं कि तात्पर्य इस का (जो) सतोवृत्ति है वह प्राप्त हो और उससे निज स्वरूप में लय हुआ। इस हेतु नहीं पढ़ते हैं कि चतुराई की बातें कहके लोगों को बहकाए और फुसलाए और सत्य छिपाए व्यभिचार कीजिए और सुरापान कीजिए और धन-द्रव्य इकठोर कीजिए और मनको कि तमोवृत्ति से भर रहा है, निर्मल न कीजिए। तोता है सो नारायण का नाम लेता है, परन्तु उसे ज्ञान तो नहीं है।”

“धन्य कहिए राजा दधीची को कि नारायण की आज्ञा अपने सीस पर चढायी, अपने हाड ऐसे कामी कुटिल अहंकारी को

दे दिये कि उसने उन हाडों को वज्र बनाय कर वृत्रासुर से ज्ञानी से युद्ध किया और उसे मारा । जो महागज की आज्ञा और दधीच के हाड वज्र न होता तो ग्यारह जन्म ता ई वृत्रासुर से युद्ध में सरवर और प्रबल न होता और जय पाता ।”

इस प्रकार क उदाहरण एक दो स्थानों पर मिलते हैं पर श्री सदासुरलाल का सुवसागर उपलब्ध नहीं । इस लिए इन पत्तियों से ही उनकी गद्यरचनाशैली का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये । (जो 'सुवसागर' नाम की पुस्तकें आजकल मिलती हैं, वे मु० सदासुरलाल की वनी नहीं हैं, अन्यान्य लेखकों की हैं ।)

सैयद इशाअल्ला खाँ—इनके पिता हकीम मीर माशा अल्लाखाँ नजाफी जफरी दिल्ली के रहने वाले थे । वे कवि थे और उनका कविता-उपनाम 'मसदर' था । इनके पूर्वज समरकन्द निवासी थे और किसी कारण से समरकन्द छोड़ काश्मीर में आ बसे थे । किन्तु माशाअल्ला खाँ नयाब जुल्फिकार खाँ के समय में काश्मीर छोड़ दिल्ली चले आये थे । कुछ समय के बाद वे दरबारी हकीम हो गये और वहीं स्थायी तौर पर रहने लगे ।

कुछ समय बाद ये दिल्ली छोड़ मुर्शिदाबाद चले आये और वहीं पर इशाअल्ला खाँ का जन्म हुआ । रईसपुत्र होने के कारण इनका पालन पोषण उसी ढंग से हुआ जैसे रईसों के पुत्रों का होता है । अपन चारों ओर शान और शौकत के सामान होने पर भी इनका चित्त कभी विद्याभ्यास से विमुख न होता था । ये बड़े

मेधावी युवक थे, अत थोड़े समय में ही इन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त कर ली। स्वभाव से ही ये अति चञ्चल और चुलबुली प्रकृति के थे। कविता की ओर इनकी अधिक प्रवृत्ति थी, इसलिए ये उसी की ओर झुके। फिर क्या था। थोड़े ही समय में ये अच्छे कवि बन गए।

अब बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला मारे गए और मुर्शिदाबाद में गड़बड़ मच गई तो ये मुर्शिदाबाद छोड़ कर दिल्ली चले आए। उस समय दिल्ली सम्राट्, शाह आलम द्वितीय के अधिकार में थी। बादशाह स्वयं भी कवि थे, इस लिए उन्हें ईशाअल्ला खाँ की कविता बहुत पसन्द आई। तब से ये बादशाह के दरबार में रह कर उनके कृपापात्र बने रहे।

दिल्ली में उस समय कई और नामी कवि भी थे। उन्हें ईशा-अल्ला खाँ का बादशाह का कृपापात्र होना बहुत बुरा मालूम हुआ। परिणाम स्वरूप वे इनसे द्वेष करने लगे और इनकी कविताओं में दोष निकालने लगे।

सन् १६४५ में गुलाम कादिर ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया और शाह आलम को अंधा कर डाला। वहाँ की परिस्थिति बदलती देख कर ईशाअल्ला खाँ लखनऊ चले आए। वहाँ पर नवाब आसफुद्दौला के दान और गुणग्राहिकता की धूम मच रही थी। इन्होंने भी वहाँ जाकर अपने भाग्य की परीक्षा करनी च ही। वहाँ पर इन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई और धीरे धीरे मिर्जा सलेमान शिकोह के कृपापात्र बन गए।

कुछ समय बाद इनका भाग्य और चमका। अपने एक मित्र की सहायता से नवाय सआदत अली खाँ से इनका परिचय हो गया। थोड़े ही समय में नवाय उन पर मुग्ध हो गए और व सदा नवाय के साथ रहने लगे।

सयद ईशाअल्ला हँमोड़ भी बड़े थे। इनका रंग गोरा और शरीर मोटा था। किसी पर्व के दिन एक फारसी शासक का स्वागत करना कर घाट पर जा बैठ और लोगों से दान लेने लगे।

सभी दिन एक से नहीं रहते। सयद साहिब और नवाय म किसी घात पर वैमनस्य हो गया। परिणाम यह हुआ कि नवाय ने इनका वेतन धन्द कर दिया। उन्हीं दिनों इनका एक पुत्र की भी मृत्यु हुई थी। इन दोनों विपत्तियों को सयद साहिब न सह सक और उनका दिमाग बिगड़ गया। धीरे धीरे सयद ऐश्वर्य विलीन हो गया और रोटी के लिए भी पराधीन हो गए। अन्तिम दिनों में घर के एक कोने में नगे घसन घुटनों पर सिर रख बैठे रहते थे। आगे रात का डेर और टूटा हुआ हुका रखा रहता था। अन्त में ऐमा कष्टमय जीवन बिताते उनका स० १८७५ में देहात हो गया।

इनकी उर्दू कविताओं व अनेक सभ्य हैं। सयद ईशाअल्ला खाँ उर्दू व विद्वान तो थे ही, हिन्दी भी उन्हें अच्छी आती थी। हिन्दी-गद्य के चार प्रारम्भिक लेखकों में इनका भी स्थान है।

इन्होंने हिन्दी में 'उदैमान चरित्र या रानी पतकी की कहानी'

लिखी है। इस कहानी के विषय में वे स्वयं लिखते हैं—“एक दिन ठ ठ बैठे यह बात अपने ध्यान में चढ़ी कि कोई कहानी ऐसी चाहिए कि जिसमें हिन्दी की छुट और किसी बोली की पुट न मेलें तब जाके मेरा जी फूल की फली की तरह खिले। बाहर की बोली और गँवारी कुछ उसके बीच में न हो। हिन्दवीपन भी न निकले और भाषापन भी न हो।”

संभवतः यह कहानी सन् १८५५ और १८६० के बीच लिखी गई है। उनके रहने के अनुसार इसकी हिन्दी ठ ठ है। इसमें न भाषापन (संस्कृत-मिश्रित हिन्दी को भाषा कहते थे) है और न किसी और बोली की पुट है।

आरम्भकाल के चारों लेखकों में ईशा की भाषा सब से चटकीली, मटकीली और मुद्दामरेदार और चलनी है। इसका उदाहरण देखिये—

“इस बात पर पानी डाल दो नहीं तो पछनाशोगी और अपना किया पाशोगी। मुझ में कुछ न हो सनगा। तुम्हारी जो कुछ अच्छी बात होती तो मेरे मुँह से जीते जी न निकलती, पर यह बात मेरे पेट में नहीं पच सकती। तुम अभी अल्हड हो, तुमने अभी कुछ देखा नहीं।”

ईशा ने कृदन्त क्रियाओं और विशेषणों के साथ भी बहुवचन-सूचक चिह्नों का प्रयोग किया है। जैसे-आतियाँ जातियाँ जो सासँ हैं, बढ़लातिया है, धूमे मचातिया, अँगडातिया अँमा-

तिया उगलातिया नचातिया और दुली पडतिया थीं। इस पुस्तक में रडिया शब्द पिलवाड स्त्रियों के लिए आगया है। इसका अश्लील अर्थ नहीं।

लल्लूलाल—लल्लूलाल आगरे के रहने वाले एक गुजराती ब्राह्मण थे। इनका जन्म सन् १८२० और मृत्यु सन् १८८० में हुई थी। ये सस्कृताभिज्ञ नहीं थे पर कविता अच्छी कर लेते थे। इनकी कविताओं का नमून इनके रचे 'प्रेमसागर' में यत्र तत्र मिलता है। ये १० सदास मिश्र के साथ ही फोर्ट विलियम कालेज, कलकत्ता में अध्यापनकार्य के लिए नियुक्त थे। वहीं पर अपने अध्ययन जान मिलक्राइस्ट के आदेश से इन्होंने भाग्यतः एक दशमस्कंध का हिन्दी में अनुवाद किया। उस पुस्तक का नाम 'प्रेमसागर' रखा। ईशा के समान केवल ठेठ हिन्दी ही लिखने का प्रयत्न तो इन्होंने नहीं किया था, पर अपनी पुस्तक में इन्होंने किसी विदेशी शब्द को भूलकर भी नहीं ध्यान दिया।

मुशी सदासुखलाल और इनकी भाषा में बहुत भेद है। मुशी जी की भाषा साफ सुथरी खड़ी बोली है। पर लल्लूलाल जी की भाषा में राजभाषा की काफी पुट है। सम्मुख जाय, सिर नाय, कीजै, निरख, सोई-आदि अनेकों शब्द जो उन्होंने प्रयुक्त किए हैं, राजभाषा में प्रयुक्त होते हैं। इनका गद्य अक्षर के समय के गद्य-कवि के गद्य से मिलता है, यद्यपि गद्य ने फारसी तथा अरबी

शब्दों का कहीं कहीं प्रयोग किया है, पर लल्लूलाल ने उनसे बचने का यत्न किया है। इनके वाक्य अनुप्रामाण्य हैं।

उदाहरणार्थ नीचे के वाक्य देखिये—

लगे देवता जय जयकार कर फूल [वर्षाने,] विगाधर, गन्धर्व, किन्नर हरिगुण [गाने]। हरि की स्तुतिकर विदा [क्रिया] और शृ क्रासुर को मोच [दिया]। इस प्रसंग को जो [सुनावेगा] सो परमपद [पावेगा]।

इस प्रकार के वाक्यों की प्रेमसागर में भरमार है।

लल्लूलाल ने हिन्दी में ही गद्यपुस्तक नहीं लिखी, इन्होंने उर्दू में भी कई पुस्तकें लिखी हैं। इनकी मिह्रासन बत्तीसी, धैतान पचीसी, शकुन्तला नाटक आदि कनिष्य पुस्तकें उर्दू में हैं और राजनीति नाम का हिनोपदेश की कहानियों का अनुवाद ब्रजभाषा में है।

इन्होंने अपना प्रेस—सस्कृतप्रेम कलकत्ते में खोला। जब ये स० १८८१ में कालेज से पेंशन लेकर आगरा में आये तो अपना प्रेस भी साथ लेत आये। पर प्रेस को अधिक समय तक चला न सके, स० १८८२ में इनका देहान्त हो गया।

पंडित सदल मिश्र—ये बिहारनिवासी और लल्लूलाल जी के समकालीन थे। जिस समय लल्लूलाल जी कलकत्ता काटोज में काम करते थे, उस समय ये भी वहीं अध्यापक थे। इन्होंने भी लल्लूलाल जी की तरह खड़ी बोली में गिलक्राइस्ट साहित्य के कहने

से नासिक्केनोपाग्यान का अनुवाद किया था। पर दोनों की भाषा में बहुत भेद है। लल्लूलाल व समान इनकी भाषा में व्रजभाषा के शब्दों की भरमार नहीं है। इन्होंने व्यवहारोपयोगी भाषा लिखने का प्रयास किया है और खड़ी बोली का व्यवहार भी यथाशक्ति किया है, पर इनकी भाषा माफसुथरी खड़ी बोली नहीं। इसमें कहीं कहीं पर व्रजभाषा के शब्द और स्थान स्थान पर पूरबी बोली के शब्द घुस आये हैं। चहुँ दिस, सुनि-आदि शब्द व्रजभाषा के हैं और इहाँ, मनारी, जौन-आदि पूरबी भाषा के हैं।

हिन्दी गद्य की प्रतिष्ठा करने वाले इन चार सज्जनों में स आधुनिक हिन्दी गद्य का आभास मुन्शी सदासुखलाल और प० सदल मिश्र की भाषा में मिलता है। व्यवहारोपयोगी भाषा भी इन्हीं की है। सयद ईशाअहमद तथा लल्लूलाल जी की भाषा का प्रयोग उनके सिवा न किसी न आज तक किया है। न और आगे को करने की सभावना है। लल्लूलाल जी की भाषा कथा-वाचकों के लिए अत्युपयुक्त है। इसी कारण प्रेमसागर का प्रचार अब भी हो रहा है।

इन चारों में मुन्शी सदा सुखलाल ने गद्य लिखने के लिए अपनी कलम पहले उठाई थी, इसलिए उन्हीं को आधुनिक गद्य का प्रधान प्रतिष्ठापक मानना चाहिए।

संवत् १८६० के लगभग हिन्दी की प्रतिष्ठा तो हो गई थी, परन्तु उसका आगे का प्रसार बन्द सा हो गया। उसके लगभग

पचास वर्ष बाद राजा शिवप्रसाद और राजा लक्ष्मणसिंह के समय में इसकी रकी हुई गति फिर आगे षो बढ़ी । बीच क पचाम व हिन्दी क प्रचार की दृष्टि से त्रिलकुल शून्य ही समझने चाहिएँ । कारण यह था कि इसी समय में लार्ड मेकाले ने भारतीय शिक्षा की नई योजना तैयार की थी । उसमें अंग्रेजी को बहुत व्यापक स्थान दिया गया था । परिणाम यह हुआ कि भारतीय भाषाओं की उन्नति में रुकावट होने लगी ।

मेकाले की नई योजना के अनुसार शिक्षालयां में हिन्दी का स्थान न रहा, पर एक और प्रकार से इसमें कुछ उन्नति हुई ।

अंग्रेजी शासन के साथ ही अंग्रेजों का धर्म (ईसाई धर्म) भी भारत में घुसने लगा । ईसाई लोग उसक प्रचार में व्यस्त दिखाने लग । उन्होंने अपने धर्म-ग्रन्थ बाइबल का अनुवाद हिन्दी में करवाया, क्योंकि बिना इसके काम न चल सकता था । उन दिनों सिरामपुर ईसाइयों का मुख्य अग्रु था । यहाँ पर पाद्री वेरे ने स्वयं बाइबल का अनुवाद हिन्दी में किया । इसके अतिरिक्त कमिपय अन्य पुस्तकों का अनुवाद भी हिन्दी में हुआ । इनक अनुवाद की भाषा सदासुरलाल और लखलाल की विशुद्ध हिन्दी थी, उसमें उर्दू या फारसी अरबी का सम्मिश्रण न था, नमूना दिया—

“यीशु ने उसको उत्तर दिया कि अत्र ऐसा होने दे क्योंकि इसी क्षति से सब धर्म को पूरा करना चाहिए । यीशु धवनिरसा लेय तुरन्त जल के ऊपर आया और देखो उसके लिये स्वर्ग गुल

गया और उसने ईश्वर की आत्मा को कपोत की नाई उतार और अपने ऊपर आत देखा।”

इसाइयों को अपने धर्म के प्रचारार्थ शिष्टाालय भी खोलने पड़े। उनमें पाठनार्थ कई पाठ्य पुस्तकें हिन्दी में तैयार करवाईं। सारांश यह है कि जब हिन्दी की उन्नति सब ओर रुकी हुई थी उस समय इसाइ ही इस प्रकार इसका कुछ न कुछ प्रसार करते रहे।

अपने धर्म के प्रचार के लिए तो अंग्रेजों ने जनसाधारण की बोलचाल की भाषा हिन्दी का ही आश्रय लिया, परन्तु अदालती भाषा उर्दू ही रही। इसका परिणाम यह होने लगा कि लोगों की हिन्दी सीखने को प्रवृत्ति दिनों दिन घटने लगी। जो कुछ हिन्दी का थोड़ा बहुत प्रचार हो रहा था वह इन पाठियों के कारण था, या तुलसी रामायण की चौपाइयों, या सूर के भजनों के कारण था। अन्यथा उर्दू का प्रचार बढ़ रहा था और हिन्दी का कम हो रहा था।

सन् १८१० में उर्दू का पहला समाचारपत्र दिल्ली में प्रकाशित हुआ। इसके बाद १९०२ में राजा शिवप्रसाद ने ‘वनारस अखबार’ नाम का पत्र काशी से निकाला। इसकी भाषा तो प्रायः उर्दू ही थी, पर लिपि देवनागरी थी। इसके कुछ वर्ष पश्चात् १९०७ में वनारस ही से ‘सुधाकर’ नाम का एक और समाचारपत्र निकला। इसकी भाषा ठेठ हिन्दी थी, पर यह कुछ समय बाद ही बन्द हो गया।

इसके अनन्तर १९०६ में आगरे से एक और पत्र ‘बुद्धिप्रकाश’

निकला जो कई वर्ष चलता रहा। इस पर की भाषा बहुत शुद्ध और सरल होती थी। उनमें से थोड़ा सा उद्धरण नीचे दिया है—

“स्त्रियों में सनोप और नघना और प्रीत यह सब गुण कर्ता ने उत्पन्न किये हैं जबल बिगा की न्यूनता है, जो बह भी हो तो स्त्रियाँ अपने सारे ऋण से चुक सकती हैं और लड़को को लिम्बाना पटाना जेमा उनसे बन सकता है वैसा दूमरे स नहीं।”

सन् १९११ में सर चार्ल्स उड ने शिक्षा के प्रचार के लिए एक आयोजन तैयार किया। उस समय उर्दू और हिन्दी का प्रश्न फिर उपस्थित हुआ। उर्दू को अदालतों में स्थान मिल चुका था, पर भारतीय साहित्य हिन्दी में था। अतः न हिन्दी की वर्णमाला और न उमक साहित्य को छोड़ना सम्भव था। फलस्वरूप उसे भी शक्षाविधान में स्थान देना पड़ा। अब एक ओर कठिनता उपस्थित हुई। हिन्दी का जितना भी प्रमुख साहित्य था वह सब पद्य में था, अतः गद्य की भाषा के सम्यन्ध में कुछ रीचातानी होने लगी। इसी समय में राजा शिवप्रसाद और राजा लक्ष्मणमिह मैदान में निकले।

सन् १९१३ में—विद्रोह के एक वर्ष पूर्व राजा शिवप्रसाद शिक्षाविभाग के इन्स्पेक्टर बने। उर्दू के पक्षपाती मुसलमानों के विरोध में उन्हें हिन्दी की रक्षा के लिए बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। विरोधियों का आरोप था कि हिन्दी कठिन है। अतः राजा साहित्य को ऐसी हिन्दी भाषा का आश्रय लेना पड़ा जिसमें

कुछ फारसी और अरबी के चलते चलते राज आ जायें। यदि वे इस नीति का अवलमन न करत तो इन्हें अपने ध्येय में कदापि सफलता न मिलती। उनके सामने एक ओर बाग़ उपस्थित थी। हिन्दी में पाठ्यपुस्तकें न थीं, जो थीं भी, वे मध्य ईसायन की सम्प्रदायता से भरी हुई थीं। इस लिए इस अभाव को दूर करने के लिए वे और उनके कुछ मित्र पाठ्यपुस्तकों की तैयारी में लग गये, और उन्हें तैयार कर दिया।

राजा शिवप्रसाद ने उस कठिन समय में हिन्दी की जोमेवाकी है, उनके लिए हिन्दीभाषी जनता को उनका चिरगायी रहना चाहिए। पाठ्यपुस्तकों के अनिश्चित राजा साहित्य ने कुछ और पुस्तकें भी लिखी हैं। उनमें से कुछ ये हैं—इतिहासतिमिरनाशक, मानव धर्मसार। इस मसूह में प्रकाशित 'राजा भोज का सपना' और 'रानी भवानी' उन्हीं की कृतियाँ हैं।

राजा शिवप्रसाद की पिचड़ी भाषा से उस समय काम भी निकल आया और विरोधियों का मुँह भी बंद हो गया, पर वास्तविक हिन्दी-प्रेमी इससे मत्तुष्ट न थे।

ऐसी परिस्थिति में हिन्दी का असली नमूना लेकर राजा लक्ष्मणसिंह साहित्य क्षेत्र में अवनीर्य हुए।

उन्होंने सन् १९१८ में प्रजाहितैषी नाम का पत्र आगरा में प्रकाशित किया और १९१६ में कालिदास की 'अभिज्ञान-शाकुन्तल' का अनुवाद सरस और शुद्ध हिन्दी में जनता के सामने रखा।

‘शकुन्तला’ की बहुत प्रशंसा हुई। राजा साहिब लिचडी हिन्दी को हिन्दी ही न मानत थे। अपने अनुवादित ‘रघुवश’ की भूमिका में उन्होंने भाषा के सम्बन्ध में अपने विचार यों प्रकट किये हैं—

“हमारे सन्दर्भ में हिन्दी और उर्दू दो बोली न्यायी न्यायी हैं। हिन्दी इस देश के हिन्दू बोलते हैं और उर्दू यहाँ के मुसलमान और फारसी पढे हुए हिन्दुओं की बोलचाल है। हिन्दी में सस्कृत के पद बहुत आते हैं, उर्दू में अरबी में फारसी के, परन्तु कुछ अवश्य नहीं है कि अरबी फारसी के शब्दों के बिना हिन्दी न बोली जाय और न हम इस भाषा को हिन्दी कहते हैं जिसमें अरबी फारसी के शब्द भरे हों।”

राजा लक्ष्मणसिंह कम्पनी के एक उच्च कर्मचारी थे। उन्हें अपना ही काम काज बहुत रहता था, तो भी वे कभी हिन्दी की सेवा से नहीं हिचकिचाये।

जिस प्रकार संयुक्त प्रान्त में राजा शिवप्रसाद शिक्षाविभाग में रहकर हिन्दी की सेवा कर रहे थे, उसी प्रकार पञ्जाब में एक बङ्गाली महाशय नवीनचन्द्र राय इम्फी सेवा में लीन थे। इन्होंने भी सन् १६२० और स० १६३७ के बीच कितन ही विषयों पर हिन्दी की पुस्तकें तय्यार कीं और करवाईं। आपकी बनाई गई पुस्तक बहुत काल तक पञ्जाब की पाठ्यप्रणाली में नियत रही हैं। उन्होंने एक शिक्षाविषयक पत्रिका

‘ज्ञानप्रदायिनी’ पत्रिका नाम से निकाली थी। इनका हिन्दी-भाषा मुद्रण था। उन्हें फारसी के मूल्तर्का से इन्होंने हिन्दी को नहीं आने दिया।

नवीन बाबू की ‘विधवाविवाह व्यवस्था’ नामक पुस्तक में एक उदाहरण नीचे दिया जाता है—

‘विधवाविवाह शास्त्रमन्मन अथवा शास्त्र विरुद्ध कर्म है। इस विषय की मीमांसा में प्रवृत्त होना हो तो पहिले यह निरूपणा करना आवश्यक है कि यह शास्त्र कानसा है जिसके सम्मत होने से विधवाविवाह कर्तव्य समझा जाय और जिसके विरुद्ध होने से अकर्तव्य समझा जाय। व्याकरण काव्य अलंकार दर्शान-प्रभृति शास्त्र इस विषय पर शास्त्र नहीं है।’

नवीनचन्द्र जी के समय में ही पञ्जाब में पण्डित मुखदयालु शास्त्री हुए हैं। ये लाहौर के थोरियेंटल कालेज में अध्यापक थे। इन्होंने ‘न्यायरोधनी’ नाम की एक पुस्तक लिखी थी। उसमें से कुछ अंश नीचे उद्धृत हैं—

‘यद्यपि मनुष्य जगत के पदार्थों का प्रत्यक्ष में ही निरचय कर सकता है तो भी बहुत पदार्थ परमाणु आदि एते हैं जो युक्तिसिद्ध हों मानने तो अवश्य पड़ते हैं, परन्तु प्रत्यक्ष उनका नहीं होता और जानना सपूर्ण पदार्थों का अभीष्ट है। इसलिये इन सब पदार्थों के मिले हुए और भिन्न भिन्न ऐसे एते धर्म जानना चाहिये कि जो धर्म जिस वस्तु का हो वह उस मारी वस्तु

में रहें कोई स्थान रीता न छोड़ और उस वस्तु से भिन्न वस्तु में कहीं न रहे ऐसे धर्म का नाम लक्षण है। जिसका लक्षण करना अभीष्ट है उसे लक्ष्य कहते हैं।

यह वह समय था जब ईसाईमत का प्रचार ज़ोरों पर था। उसकी आती हुई बाढ़ को रोकने की आवश्यकता थी। समय ने स्वामी दयानन्द सरस्वती जी को कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण किया। सन् १६१० से उन्होंने नगर नगर घूम कर वैदिक मत का प्रचार और आर्यसमाजों का मस्थापन किया। स्वामी जी की मातृभाषा गुजराती थी, पर वे हिन्दी के कट्टर पक्षपाती थे। इसी भाषा को वे सार्वदेशीय भाषा बनाने के पक्ष में थे। उनकी प्रतिभा का चमत्कार इसी से ज्ञात होना है कि गुजराती भाषा-भाषी होने पर भी उन्होंने अपने सध ग्रन्थ हिन्दी में ही लिखे हैं। इनका रचा हुआ 'सत्यार्थप्रकाश' अब तक लाखों की संख्या में प्रकाशित हो चुका है। आपकी हिन्दी भी शुद्ध है, पर कहीं कहीं उस पर गुजराती का प्रभाव स्पष्टकता है।

स्वामी जी का पञ्जाब में बहुत प्रभाव पड़ा। उर्दू के गठ पञ्जाब में उनके हिन्दी प्रचार को आशानीत सफलता मिली है। आर्यसमाजो स्कूलों के द्वारा हिन्दी का खूब प्रचार हो रहा है। आर्य-समाज के प्रभाव को रोकने के लिए मनातन धर्म सभाओं की प्रतिष्ठा हुई। उन्होंने भी आर्यसमाज की कार्यप्रणाली

का ही अवलम्बन किया। अब उनके द्वारा भी हिन्दी की अच्छी उन्नति हो रही है।

आर्यसमाज के आन्दोलन के समय में सन् १९२० में एक त्रिलक्षण प्रतिभाशाली विद्वान् पण्डित श्रद्धाराम फिल्लौरी के व्याख्यानो की पत्रिका में बड़ी धूम थी। ये ईसाईमत के विरोधी थे और अपने व्याख्यानो के द्वारा उसके प्रभाव को कम कर रहे थे। इनकी महाभारत और रामायण की कथाएँ अत्यन्त रोचक होती थीं। सहस्रों मनुष्य उन्हें सुनने को एकत्रित होते थे। इनकी भाषा बड़ी जोरदार होती थी। इन्होंने अपने सिद्धान्तों का एक ग्रन्थ 'सत्यामृतप्रवाह' नाम का लिखा है। इनकी प्रकृति बहुत स्वतन्त्र थी। ये स्वामी जी के कई सिद्धान्तों के विरोधी थे और कई के सम्मत। इन्होंने पीछे 'आत्म चिन्तना' 'तत्त्वदीपक' 'धर्म रत्ना', 'उपदेश समूह' आदि कई धर्मग्रन्थों लिखी हैं। इन्होंने एक अपना जीवनचरित्र भी लिखा था जो अब उपलब्ध नहीं। इनकी मृत्यु स० १९३८ में हुई। जनता इनकी हिन्दी लिखने में हरिश्चन्द्र के समकक्ष मानती थी।

राजा लक्ष्मणसिंह के समय में हिन्दीगद्य अपने भावी रूप का आभास दे चुका था। अब आवश्यकता थी ऐसे प्रतिभासम्पन्न शक्तिशाली लेखकों की जो उसे सुव्यवस्थित और परिमार्जित कर सत्साहित्योपयोगी बनावें। ठीक ऐसी परिस्थिति में हरिश्चन्द्रजी का साहित्य क्षेत्र में उदय हुआ।

हरिश्चन्द्र जी की जीवनी के सम्बन्ध में केवल इतना ही कहना है कि बचपन में ही इनमें एक भावुक और प्रतिभाशाली लेखक होने के लक्षण दीर्घने लग गये थे। जो भाग इन्होंने हिन्दी भाषा और साहित्य को एक सुन्दर मरणी में चलाने में लिया है वह अत्युपम है। इन्होंने जिन प्रकार गद्य की भाषा को परिमार्जित करके उसे बहुत चलना, मधुर और स्वच्छ रूप दिया उसी प्रकार हिन्दी साहित्य को भी नवीन मार्ग पर ला दिया। उनकी चलाई भाषा-परिपाटी को समने अपनाया है, इसलिए व वर्तमान हिन्दी गद्य के अद्वितीय प्रवर्तक माने गये हैं। 'मुशी मन्सुम्वलान्त की भाषा माफ होते हुए भी परिडताऊपन लिए थी, लख्खूलाल में ब्रजभाषापन और सद्दल मिश्र में पूरबीपन था, राजा शिवप्रसाद का उर्दूपन शब्दों तर ही परिमित न था, वास्य दिव्यास तक घुसा था। राजा लक्ष्मणसिंह की भाषा विशुद्ध और मधुर तो अवश्य थी, आगरे की बोलचाल की पुट उसमें कम न थी। पर भाषा का निरतरा हुआ शिष्ट सामान्य रूप भारतेन्दु की कला के साथ ही प्रकट हुआ। भारतेन्दु ने पद्य की ब्रजभाषा का भी बहुत कुछ सस्कार किया। पुराने पडे हुए शब्दों को हटाकर काव्य-भाषा में भी वे बहुत कुछ चलतापन और मफाई लाए।

सबसे बड़ा काम उन्होंने यह किया कि साहित्य के मुस को से हटा कर नये मार्ग की ओर किया। जनता और

साहित्य में समता स्थापित की। नई शिक्षा के लोगों की विचार-धारा उदर दी। उनमें नई आशाएँ और नई उमंगें उठ चुकी थीं। भारतेन्दु ने उनकी आशाओं पर प्रमुख साहित्य का निर्माण किया। बंगला का साहित्य बहुत उन्नति कर रहा था, उसमें अच्छे अच्छे नाटक और उपन्यासों का आविर्भाव हो रहा था, पर हिन्दी में वही अनन्त काल से चली आती भक्ति धार शृंगार की धारा बह रही थी। भारतेन्दु ने उमंगें मोड़ कर हमारे जीवन की अनुगामिनी कर दिया। इस प्रकार हमारे जीवन और साहित्य में जो विच्छेद पड़ा था, उसे उन्होंने दूर किया। इस कारण हिन्दी भाषा और साहित्य के एक मात्र उद्धारक भारतेन्दु ही थे।

सन् १८२२ में वे परिवार जगन्नाथ यात्रा को गये। उसी यात्रा में उन्हें बंगला साहित्य का परिचय हुआ। बंगला साहित्य उन दिनों नित्य नये उपन्यास, नाटक, इतिहास ग्रन्थों से भरा जा रहा था। भारतेन्दु को उसका साम्मुख्य में हिन्दी की दशा बहुत हीन जैसी। यात्रा से लौटते ही वे इस अभाव को दूर करने की योग्य अप्रवृत्त हुए। सन् १८२५ में उन्होंने 'त्रिगामुन्दर' नाटक का बंगला से अनुवाद किया। उसी वर्ष 'कविचरनसुता' नाम की एक हिन्दीपत्रिका भी निकाली, जिसमें उत्तमोत्तम कविताएँ और गद्य-लेख निकलने लगे। सन् १८३० में उनकी 'हरिश्चन्द्र-योगजीन' निकली, पीछे इसका नामकरण संस्कार 'हरिश्चन्द्रचन्द्रिका' नाम से हुआ। इस चन्द्रिका में भारतेन्दु स्वयं तो लिखते

ही व, पर कई एक अन्य लेखक भी इनमें उत्साहित होकर अपने अपने लेख उसमें प्रकाशित कराने लगे ।

सन् १९३० में उन्होंने 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' नाम का मौलिक नाटक लिखा और सन् १९३१ में 'बालागोप्तिनी' पत्रिका निकाली ।

'वैदिकी हिंसा' के बाद उनके 'रूपूरमजरी', 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'चन्द्रावली नाटिका', 'मुद्राराक्षस', 'भारत दुर्दशा' 'अधेर नगरी', 'नील-दधी' आदि बहुत से नाटक निकले ।

इन नाटकों के अतिरिक्त उन्होंने 'काश्मीर-सुसुम' और 'बाद-शाह-दर्पण' नामक दो इतिहास-ग्रन्थ भी रचे ।

इनका देहान्त स० १९४१ में हुआ । पैंतीस वर्ष की इतनी छोटी आयु और अठारह वर्ष के साहित्यिक जीवन में हरिश्चन्द्र ने हिन्दी की इतनी सेवा की है जो दूसरों से सैकड़ों वर्षों में भी सम्भव नहीं ।

हरिश्चन्द्र ने अपने जीवन काल में ही अपने प्रभाव से अपने चारों ओर हिन्दी-कवियों और लेखकों की एक खासी मण्डली तैयार कर ली थी । साथ ही हिन्दी के कतिपय पत्र भी निकलाने लग गये व । इनमें बिहार-वन्धु, भारत-वन्धु, हिंदी-प्रदीप, आनन्द-कादम्बिनी, पीयूष-प्रवाह, भारत-जीवन उल्लेखनीय हैं । इन लेखकों में से बहुतों का ग्रन्थ किसी न किसी पत्रिका से था । उनमें कुछ तो हिंदी के अच्छे लेखक माने जाते हैं । पहिले बन्नीनारायण

चौधरी, परिहित प्रतापनारायण मिश्र, वायू तोनाराम, ठकुर जगमोहन सिंह, श्री निवासदास, बालकृष्ण भट्ट, पेशवराज भट्ट, राधाचरण गोस्वामी—ये सब भारतेन्दु के समकालीन थे। अपने अपने साहित्यिक क्षेत्र में इन्होंने हिन्दी की अच्छी सेवा की है।

इस लेख का उद्देश्य केवल हिन्दी के प्राचीन गद्य का इतिहास देना है। प्राचीन लेखकों की श्रेणी स्वामी दयानन्द सरस्वती तक ही समाप्त हो जानी है। उनके बाद हरिश्चन्द्र जी का उदय होता है। हरिश्चन्द्र जी नवीन शैली के प्रवर्तक और सस्थापक और प्राचीन गद्य और नवीन गद्य में सम्बन्ध स्थापित करने वाले हैं। इनके समय में हिन्दी की अच्छी उन्नति हुई।

इनके बाद एक और समय आया। उस समय हिन्दी की प्रतिष्ठा हो चुकी थी, उसके अच्छे लिखने वाले भी थे, पर अंगरेजी पढ़े लिखे मित्रों का झुकाव अभी उभर न हुआ था। फिर कुछ मित्रों ने कहने सुनने से और कुछ अपनी लगन से वे लोग हिन्दी की ओर झुके और उसका साहित्य बढाने लगे। पर उनकी भाषा त्रुटि पूर्ण थी। वे लाल-रक्त और बालाके शब्दों के आगे निमकि चिन्ह लगा कर वाक्य बना देना ही हिन्दी लिखना समझते थे। उनकी हिन्दी व्याकरण-नियमों से कोसों दूर थी। ऐसी परिस्थिति देख कर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' में लेख लिख-लिख कर उन लेखकों का ध्यान उधर आकर्षित किया। परिणाम यह हुआ कि हिन्दी का रूप बहुत कुछ सुधर गया।

इसके उपरान्त हिन्दी की ओर लोगो की रुचि बढ़ने लगी। नाटकों, उपन्यासों, गल्पों, और हिन्दी में दूसरे विषयों की पुस्तकों को पढ़ने के लिए लोग उत्सुक थे।

प्रकृति का नियम है कि जब किसी वस्तु की माँग होती है तो उसे पूरा करने के साधन भी निकल आते हैं। समय ने श्री-जयशंकर प्रसाद से नाटककार, स्वर्गीय प्रेमचन्द जी से उपन्यासकार, प्रेमचन्द, सुदर्शन और कौशिक जैसे गल्पकार, प्राचार्य द्विवेदी जैसे समालोचक और दूसरे अपने अपने विषय के धुरधुर एडिटर—कई लेखकों को जन्म दिया। उनकी कृपा से हिन्दी-साहित्य-भण्डार दिनों दिन भरा जा रहा है। इस समय हमें हिन्दी का भविष्य समुज्ज्वल दीखता है। आशा है कि जिस तरह आज यह भारत की ममस्त भाषाओं में मुख्य और सार्वजनिक भाषा का पद प्राप्त करने के योग्य समझी जा रही है उसी तरह समय आने वाला है जब यह समग्र भूमण्डल की भाषाओं में उच्च पद पाकर अपना और इस वृद्ध भारत का गुण उज्ज्वल करेगी। किन्तु तब और केवल तब, जब इसके सुपुत्र इसकी सेवा में तन-मन से निरत रहेंगे।

एक दो और शब्द

प्रस्तुत पुस्तक में यह दिखाने कायन किया गया है कि गोरखनाथ जी के समय से लेकर भारतेन्दु के उदय तक हिन्दी की गद्य-

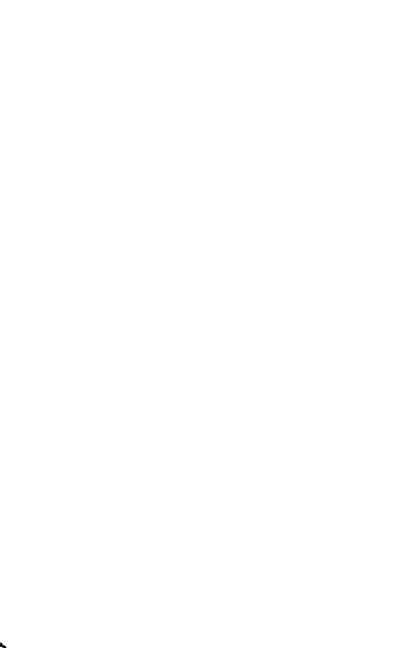
शैली में किस प्रकार विकास होता चला आया है। इस पुस्तक की भूमिका में प्राचीनकाल के लेखकों की शैली व नमूने यत्र तत्र दिये गये हैं। यह भी सिद्ध किया गया है कि हिंदी-गद्य व वास्तविक प्रचारक लेखक-चतुष्टय—सदासुखलाल, ईशाअब्बा, लल्लूलाल और सदल मिश्र ह। पर इनसे पहले भी गद्य रचना होती रही। इसलिए हमने सम्भवतः सोलहवीं विक्रम शताब्दी व मध्य में लिखी हुई गोस्वामी गोकुलदास की 'दोसो ज्ञान वैष्णव की वार्ता' से मतामीवै वैष्णव की वार्ता उद्धृत की है। इससे प्राचीनतम हिन्दी गद्य का विशेष परिचय हो सकेगा। इससे पश्चान् हम सदासुखलाल जी के 'सुखसागर' से काफी उद्धरण पुस्तक के कलेवर में देना चाहते थे, पर सुखसागर की अनुपलब्धि व कारण उनसे छोटे से दो उद्धरणों को भूमिका में ही देकर सन्तोष करना पड़ा। लल्लूलाल जी के 'प्रेमसागर' में, ईशाअब्बा की 'रानी केतकी की कहानी' से और सदल मिश्र के 'सामिकनोपाख्यान' से काफी अंश लिये हैं। पुनः स्वामी दयानन्द तक सब लेखकों के गद्य व नमूने पद्याप्त म्याड में दे दिये हैं।

सम्पादक

प्राचीन गद्य

गोसाईं गोकुलनाथ

गोसाईंजी श्री बल्लभाचार्य के पौत्र थे। इनके पिता का नाम गोसाईं विठ्ठलदास था। बल्लभाचार्य जी सगुणोपासना की कृष्ण-भक्ति शाखा के सम्प्रदाय के आचार्य थे। उनके पुत्र और पौत्र उसी सम्प्रदाय के अनुगामी थे। गोसाईं गोकुलनाथ जी ने उसी सम्प्रदाय की महिमा को बढ़ाने वाली कथाओं का वर्णन 'दो सौ चावन वैष्णवों की वार्ता' और चौरासी वैष्णवों की वार्ता' इन दो पुस्तकों में किया है। इनकी भाषा साहित्यिक नहीं, बोलचाल की है। उसमें अरबी और फारसी के शब्दों का प्रयोग भी यत्र-तत्र मिलता है इन वार्ताओं का रचनाकाल संवत् १६२५ और १६५० के बीच माना जा सकता है।



सत्तासीवें वैष्णव की वार्ता

श्री गुरसाई जी के सेवरु एक ब्रजवासी की वार्ता मो वे ब्रज-वासी श्रीनाथजीकु परे कहते। सो ब्रजवासी गायन की खिरक में सेवा करतो हतो और एक सीरो भण्डार मनु ले जातो हतो और आठ पेहेरे गायन की सेवा मन लगायके बहुत आछी करतो हतो। एक दिन कोई वैष्णवकु श्री गुरसाई जी श्रीठाकुरजी पधराय देते हत सो वा ब्रजवासीने देख्यो फेर एक दिन श्री गुरसाईजीसु वा ब्रजवासीने धीनती करी जो मोकु श्रीठाकुरजी पधराय देवो। वाही समय श्री गुरसाई जी न्हायके पधारते हते। जन आगे एक पत्थर पड्यो हतो। वा पत्थरकु श्री गुरसाई जी के सडाउ की ठोकर लगी सो दूर जाय पड्यो और उहा वे ब्रजवासी ठाडो हतो। श्रीगुरसाई जी नें कही परेपरे एंमे कहके श्रीगुरसाई जी भीतर पधारे। जन वो पत्थर ब्रजवासीन उठाय लियो फेर वा ब्रजवासी नें मनमे एंमो समझो य मोकु श्रीगुरसाईजीने श्रीठाकुरजी पधराय दीये और परेपरे श्रीठाकुरजी को नाम कहि दीयो है। ऐसो भोरो हतो सो वे पत्थरकु ठाकुरजी मानके पधराय ले गयो फेर मनमे समझ्यो जो सीधोतो एक आरै सो परे कहा सारंगो। और मैं कहा सारंगो एंसे समझके भण्डारीसु कही अत्र हमकु दो मीधा दधो। भण्डारी नें दो सीधा दिये मो फेर जायके रसोई करी और ब्रजवासी भोरो बहुत हतो। जन वानें दो पात्र करदीती फेर कही आप भाई परे

एक पानर तरी और एक पानर मरी जब श्रीठाकुरजी आये नहीं—
 नय वो प्रजवासी कफनलग्यो जो भाइ तु आयक अपनी पानर
 सभार ले । जो प्ररोजर है क कर-कार है जो तु नहीं आवेंगो तो
 मैं दोनों पानर तलाव म डार दउगो तन श्रीठाकुर जी
 वाको शुद्धभाव जानरे और भोरो जानके पधारे और
 साक्षात्स्वरूप धर क जीमन लग । ऐंसे नित्य कृपा करक
 पवारत । एक दिन श्री गुमाइजी न पूछी जो तु दो सीधा कहा
 करेंहे । जब वाने कही जो आपन वो परे परराय दीयो हे सो
 एक पानर उ रयाय है थार एक पानर में खाउहु ये बात सुनर
 श्री गुमाइजी मुम्काय क चुप कर रहै कर एक दिन भएडारी न
 वा प्रजवासी सु कही जो तुम सूरत गाम म जाय क भेट ले आवो ।
 जब प्रजवासी ने कही सूरत गाम कान होव है । भएडारी ने कही
 सूरत गाम सहेर है जब वा प्रजवासी न कही भेटपर और प्रसाद
 की थली दवो तो मैं सूरत जाउ । जब उहासु प्रसाद थार पर
 लेक थार रमाइ करक सूरत की तैयारी करी और कही जो
 भैया परे मैं तो सूरत जाउगो और तु आवगो क नहीं आवेंगो ।
 जब श्री ठाकुरजी ने कही जो मैं आवुगो जब वाने कही जो तरे
 छोट छोट पाँव हैं । और छोट छोट हाथ हैं तु कैसे चल सकेंगो ।
 जब श्री ठाकुरजी ने कही मैं थोडो थोडो चलुगो । थार थोडीवार
 नरे काधे पर चँडुगो । ये जान कहिके श्री ठाकुरजी प्रजवासी क
 साथ चले ये उहा ते प्रजवासी चले जब दो तीन कोस आये तप
 श्री ठाकुरजी ने नही मैं थक गयो हु । जब वा प्रजवासी के काधा

पर बैठे जत्र थोरी दूर चले तब साफ भई तत्र श्री ठाकुरजी ने ही जो आज उहा मोण रही फर काल सुग्ग चलेंग फेर हा मोय रहे फेर मवार उटे मो गेमे डिफाणे उटे गहासु सूरत दोय कोश रही हनी । तत्र उहातें चले पर सूरत प्राये उहा गाम जाहेर डेरा कीये और उहा श्री ठाकुरजीकु ठाय व दो ब्रजवासी पत्र और प्रमाद ले गयो । गाम में वैष्णवन-कु पृत्र के लियो । वे पत्र वाच के वैष्णवन ने विचार कियो जो एक दिन में पत्र कैसे आयो होयगो । जय ये विचार कियो यामें भेद कुछ अरथ होयगो । तत्र वैष्णवन ने वाकु माममी दिवाई और एक दिन में सत्र ठिकाने फिरवे पाच हजार रुपया एकट्टे करक और हुडी करायके तत्र ब्रजवासी कु दीनी । सो ब्रजवासी लेके और परेकु सग लेके उहातें चले । फेर रस्ता में प्रायवे मोय रहे फेर सगरे उठके वेहेर दिन चढ्यो गोपालपुर में प्राये फेर भडारी के पास गयो और दो सीधा मागे । जत्र भण्डारी ने कही सूरत क्यु गयो नहीं जत्र बानें कही सूरत जाय आयोहु पत्र और वख लायोहु । सो भण्डारीकु दीये । जत्र भण्डारी ने पाच हजार की हुडी और वख और वैष्णवन के कागद देखके चकित होय गयो । जो एक रान में कैसे गयो होयगो और कैसे आयो होयगो सो व बात की चीनती श्री गुसाईजी के आगे करी श्री गुसाईजी सुनके ऐसी आज्ञा करी जो ए सत्र श्रीनाथ जी के काम है आज पीछे या ब्रजवासीकु कछु काम मत घताईयो और

जन्म मूधी गेय मीधा यातु नित्य टीजियो और नित्य वा प्रजयानो-
 कु बुलाय व श्री गुमाईजी परे की वाने पूजो फरते आज परे न
 य वही आज पर न य कही गेस नित्य कथा करे मो घे प्रजयानी
 मोलो हतो जन्मसु थी ठाकुरजीकु परे ममको करे गेयो घृपापात्र
 हतो । वाना सपूर्य ॥ वैष्णव ॥८७॥

(श्री गोकुलनाथ जी की "ले सो धारन
 वैष्णवो की वार्ता" मे से)

लल्लूलाल

(सवत् १८२०--१८८२)

लल्लूलाल जी गुजराती ब्राह्मण थे। इनका निवासस्थान आगरा था। उर्दू और हिन्दी के ये अच्छे पण्डित थे। पर सस्कृत का इन्हें विशेष ज्ञान था। ये भी पण्डित सदल मिश्र के साथ फोर्ट विलियम कालेज, कलकत्ता में जान गिलक्राइस्ट की अध्यक्षता में काम करते थे, उन्हीं की उत्तेजना से इन्होंने भागवत के दशम स्कन्ध का हिन्दी-अनुवाद 'प्रेमसागर' नाम से रचा।

यद्यपि इन्होंने 'प्रेमसागर' खड़ी बोली में लिखा है तो भी उसपर ब्रजभाषा का काफी रङ्ग चढ़ा हुआ है। इनकी भाषा का बोलचाल में प्रयोग नहीं किया जा सकता और नहीं प्रचलित साहित्यिक भाषा को भी इससे कुछ सहायता मिल सकती है। इनकी भाषा में अनुप्रास अलंकार का प्रयोग बड़ी प्रचुरता में मिलता है। प्रेमसागर की भाषा को हम 'काव्यभास' गद्य ही कह सकते हैं जो भक्तजनो की कथायार्ता में अधिक काम आ सकती है। यही कारण है कि इस समय भी प्रेमसागर का प्रचार बहुत अधिक है।

प्रेमसागर लिखने से पूर्व इन्होंने सिंहासन बत्तीसी, बैताल पच्चीसी, शकुन्तला नाटक, माघोनत--दश पार पुस्तको का उर्दू में अनुवाद किया है। इनमें अतिरिक्त इन्होंने हिन्दी 'हितोपदेश' का ब्रजभाषा गद्य में अनुवाद 'राजगीरि' नाम से किया है।

मन् १८८१ म कालेज से पेन्शन लेकर ये आगरा आ गये थं
 और वहा से अपना 'संस्कृतप्रेस' भी साथ लेते आय । पर उसे
 ज्यादा दिन तक चला न सके क्योकि उसके एर माल घाद ही
 सन् १८८१ में इनका देहान्त कलकत्ता में हो गया ।

प्रेमसागर

अथ कथा—प्रारम्भः

पीढानन्ध

महाभारत के अन्त में जब श्रीकृष्ण अन्तर्ध्यान हुए तब पाण्डव तो महादुःखी हो, हस्तिनापुर का राज्य परीक्षित को दे हिमालय गलने गये। और राजा परीक्षित मर दश जीत धर्मराज करने लगे, कितने एक दिन पीछे राजा परीक्षित आखेट को गये तो वहाँ देखा कि एक गाय और बैल दौड़े चले आते हैं, तिनके पीछे मूसल हाथ में लिए एक शूद्र मारता आता है। जब वे पास पहुँचे तब राजा ने शूद्र को बुलाय दुःख पाय भुँभलाय कर कहा थरे तू कौन है ? अपना घराना कर जो मारता है गाय और बैल को जान कर, क्या तैने अर्जुन को दूर गया जाना तिससे उसका धर्म नहीं पहिचाना। सुन, पाण्डव में ऐसा किसी को न पायेगा कि जिसके सोहीं कोई - गेगा। इतना कह

कर राजा ने खड्ग हाथ में लिया। वह दस कर सडा हुआ निर नरपति ने गाय और बैल को भी निरुद बुलाय कर पूँजा तुम कौन हो बुझा कर कहो दवना हो कि श्राद्धाण और किस लिये भागे जाते हो सो निघडक रहो मरे रहते किसी की उना सामर्थ्य नहीं जो तुम्हे दु स ड।

इतनी बात सुनी तत्र तो बैल शिर झुका कर बोला— महाराज ये पापरूप, काले बण, डरावनी सूरत जो आपके सन्मुख सडा है सो कलियुग है, इसी क आन से मैं भागा जाता हूँ। यह गाय रूप पृथ्वी है, सो भी इसी के डर म भाग चली और मरा नाम धर्म है, चार पाँव रखता हूँ—तप, सत्य, दया और शोच, सतयुग में मेरे चरण वीस विस्व थ, त्रेता में सोलह, द्वापर म बारह, अब कलियुग मे चार विस्व रहा, इसमें कलि क बीच चल नहीं सकता। धरती बोली—धम्मावतार! मुझ से इस युग मे रहा नहीं जाता, क्योंकि शूद्र राजा हो अधिक अधर्म मरे ऊपर करेंगे तिनका बाम में न सह सऊँगी। इस भय स मैं भी भागती हूँ। यह सुनत ही राजा ने क्रोध कर कलियुग से कहा— मैं तुम्हे अभी मारता हूँ, वह थरथरा राजा क चरणा पर गिर गिडगिडा कर कहन लगा कि, पृथ्वीनाथ! अब तो मैं तुम्हारी शरण आया मुझे कहीं रहन को ठौर बताइये, क्योंकि तीन काल और चार युग प्रज्ञा न बनाये हें सो किसी भाति मट नहीं मिलेंगे। इतना बचन सुनत ही राजा परीक्षित न कलियुग से कहा कि तुम इतनी ठौर रहो—जुयें, भूँठ, मद की हाट, बेर्या क दत्या, चोरी और सुवर्ण में, यह सुन कलि ने तो अपन

स्थान को प्रस्थान किया और राजा न धर्म को अपने मन में रख लिया, पृथ्वी अपने स्वरूप में मिल गई। राजा फिर नगर में आये और धर्मराज करने लगे। कितने एक दिन बीते राजा फिर एक समय आगेट को गये और खेलते खेलते प्यासे भये, शिर के मुकुट में तो कलियुग रहता ही था उसने अपना अवसर पा राजा को अज्ञान किया, राजा प्यास के मारे वहाँ आते हैं कि जहाँ लोमश ऋषि आसन मारे नयन मूँदे हरि का ध्यान लगाये तप कर रहे थे, उन्हें देख राजा परीक्षित मन में कहने लगे कि इन्होंने अपने तप के घमण्ड से मुझे देग आँखें भूँद ली हैं, ऐसे कुमति ठान एक मरा साँप वहाँ पडा था सो धनुष से उठा ऋषि के गले में डाल अपने घर आया। मुकुट पतारते ही राजा को ज्ञान हुआ तो सोच कर कहने लगा कि कछन में कलियुग का वास है यह मेरे शीश पर था इससे मेरी ऐसी कुमति हुई जो मरा सर्प ले ऋषि के गले में डाल दिया सो मैं अब समझा कि कलि ने मुझसे पलटा लिया, इस महापाप से कैसे छूटूँगा। वरन् धन, जन, स्त्री और राज मेरा क्यों न गया सत्र आज, न जानूँ किस जन्म में यह अधर्म जायगा जो मैंने ब्राह्मण को सताया है। राजा परीक्षित तो यहाँ इस अथाह शोक-सागर में डूब रहे थे और जहाँ लोमश ऋषि थे तहाँ कितने एक लडके खेलते हुए जा निकले, मरा साँप उनके गले में देख अचम्भे में रहे और घबरा कर आपस में कहने लगे कि भाई कोई इनके पत्र में जाकर कहदे, जो उपजन में कौशिकी नदी के तीर

एक में खेलता है, एक मनुते ही दौड़ा वहीं

शुद्धी श्रुति धोकरों के साथ खेलता था । रुहा बन्धु तुम यहाँ क्या खेलत हो, कोई दुष्ट मरा साँप तुम्हारे पिता न कण्ठ में डाल गया है । सुनते ही श्रुती श्रुति क नेत्र लाल हो आये, दाँत पीस-पीस लगा धर-धर साँपन और क्रोध कर कहने कि कलियुग में राजा उपजे हैं अभिमानी, धन के मद से अन्धे हो गये हैं दुःखी, अन्न में उनको देंहूँ शाप, वही भीच पावैगा आप । ऐसे कह श्रुती श्रुति ने कौशिकी नदी का जल चुलू में ले राजा परीक्षित को शाप दिया कि यही सर्प सातवें दिन तुमको लसेगा । इस भाँति राजा को शाप द अपने बाप क पाम आ गले स साँप निकाल रहने लगा कि हे पिता, तुम अपनी देह सँभालो, मैंन उसे शाप दिया है जिमन आपक गले में मरा सर्प डाला था । यह बात सुनते ही लोमश श्रुति ने चैतन्य हो नयन उघाड अपन ज्ञान, ध्यान स विचार क रहा—अरे पुत्र ! तूने यह क्या किया ? क्यों शाप राजा को दिया ? उसने राज्य में हम सुग्री व और कोई पशु पक्षी भी दुःखी न था । ऐसा धर्मराज था कि मित्र गाय एक मात्र रहत और आपस में कुट्ट न कहते । हे पुत्र ! जिनक दश में हम बसे व क्या हुआ निनके हाथ स मरा हुआ साँप डाला गया, उसे शाप क्यों दिया ? तनक दोष पर ऐसा शाप तैन दिया, वडा ही पाप किया, कुट्ट विचार मन में न किया । गुण छोडा आगुण लिया, मायु को चाद्रिण शील स्वभाव मे रहे, थाप कुट्ट न कहै और फी सुन ले मन का गुण ले अगुण तनै । इतना कह लोमश श्रुति ने एक चने को मुला कर कहा तुम गजा परीक्षित को जाके दो जो तुम्हें श्रुती श्रुति ने शाप दिया है भले लोग तो

दोप देहोंगे पर वह सुन माग्धान नो हो जाय । इतना बचन गुरु
 का मान चेला चला वहाँ आया जहाँ राजा बैठा मोच करता था,
 आते ही कहा--महाराज ! तुम्हें शृगी ऋषि ने यह शाप दिया है
 कि सातवें दिन तच्छक डसेगा, अर तुम अपना कार्य्य करो जिससे
 कर्म की फाँसी से छूटो । राजा सुनत ही प्रसन्न हो हाथ जोड कहने
 लगा कि मुझ पर ऋषि ने बड़ी कृपा की जो शाप लिया--क्योंकि
 मैं माया मोह के अपार शोक-सागर में पडा था सो निकाल वाहर
 किया । जन मुनि का शिष्य पिदा हुआ तब राजा ने आप बैराग
 लिया और जनमेजय को बुलाय राज पाट देकर कहा--बेटा तो
 ब्राह्मण की रक्षा कीजो और प्रजा को मुख दीजो । इतना कह
 आये रनिग्राम, देगी नागी सभी उदास, राजा को दरते ही रानियाँ
 पाँवो पर गिर रो रो रहने लगीं--महाराज ! तुम्हारा वियोग
 हम अरला न सह सकेंगी इसमे तुम्हारे साथ जी दें तो भला ।
 राजा बोला--सुनो स्त्री को उचित है कि जिम्मे अपने पति
 का धर्म रहै सो करे, उत्तम कार्य्य में बाधा न डाले । इतना कह
 धन जन कुटुम्ब और राज्य की माया तज निर्मोही हो
 अपना योग माधने को गंगा क तीर जा बैठा । इसको जिम्मे
 सुना रह हाय ० अर पछताय ० बिन रोये न रहा और जन
 ये समाचार मुनिया ने सुना कि राजा परीक्षित शृगी ऋषि के शाप
 से मरने को गङ्गा क तीर आ बैठा है । तब व्यास, वशिष्ठ, भरद्वाज,
 कात्यायन, पराशर, नारद, विश्वामित्र, वामदेव, जमन्नि, आदि
 अष्टासी सहस्र ऋषि आये, और आसन पिछाय र पाँत ०

माँति व धर्म सुनाने लगे कि इतने में राजा की भ्रष्टा
 दम पोधी काँच में लिपि लिगम्बर भेष थी शुक्रदत्त जी भी
 आ पहुँचे। उनको दसत ही जितन मुनि व मंत्र के सब
 उठ गडे हुए, और राजा परीक्षित भी हाथ बाँध गडा हो
 गिनती कर रहने लगा। हे वृषानिधान मुक्त पर बडी त्यागी जो
 इस समय मरी सुध लिया। इतनी बात कही तब शुक्रदत्त मुनि भी
 बैठे तो राजा ऋषियो से कहने लग कि महाराज शुक्रदत्त व्यामि जी
 व तो जेठे और पराशर जी व पोते तिनको दर तुम बडे मुनीश
 होक उठे मो तो उचित नहीं इसका कारण कहो जो मरे मन का
 मन्वेह जाय। तब पराशर मुनि बोले--हे राजा जितन हम बडे
 ऋषि हैं पर ज्ञान में शुक्रदत्त जी से छोटे हैं, इसलिये सब न शुक्र
 का आदर मान किया, किन्ती ने इस आश पर किये तारणतरण
 हे त्योंकि तब से जन्म लिया है तबही से उगासी हो बनवास
 करत है और राजा तेरा भी बडा पुण्य उदय हुआ जो शुक्रदत्तजी
 आये, य मंत्र मों से उत्तम धर्म रहेंग तिस से तू जन्म मरण से
 बूट भ्रमसागर पार होगा। यह बचन सुन राजा परीक्षित ने श्री
 शुक्रदत्तजी को दण्डवत् कर पूँछा कि, महाराज ! मुझे धर्म
 समझाय व रहो कि किस रीति से कर्म क फल स छुट्टेंगा, सात
 दिन म क्या करुगा ! अधर्म है अपार, कैसे भ्रमसागर हूँगा पार।
 श्रीशुक्रदत्त जी बोले--राजा तू थोडे दिन मत समझ, मुक्ति तो
 होती है एक ही घडी व ध्यान मे, जैसे पट्टाङ्ग राजा को नारद
 मुनि ने ज्ञान बनाया था और उमन दो ही घडी मे मुक्ति पाई थी
 तुम्हें तो सात दिन बहुत हैं। जो एकचिन होक ध्यान मे मंत्र

ममको अपने ही शाल से, कि क्या है दंड किसका है धाम धीन
करता है हममें प्रकाश। यह सुन राजा ने दर्प कर पूरा। ममागज!
मव धर्मों से उत्तम धर्म कौनसा है नो पूरा कर क्यो। मव
शुक्रदेव जी योगे—५ राजा। जैसे मव धर्मों म धैर्याव धर्म यदा
हैं तैसे पुराणों में श्रीमद्भागवत। नती इतिभ्य य कया मुतां है,
तही ही मर्वे तीर्थ और धर्म आव है। चितने है पुराण पर नती है
भागवत क समान, इन कारण में तुम शक मन्व्य महापुराण
सुनाता हू जो व्यास मुनि न मुक पदाश है नू धेहा मगेन भ्रानन्द
से चित्त दे सुन। तत्र तो राजा पराभ्य प्रेम से सुनने और शुक्रदेव
जी मन में सुनात लगे।

नरमस्कन्ध की कथा जब मुनि ने सुनाई तब राजा ने कहा—
ह दीनदयाल अत्र दयाकर कृपाकर हूँ कृपा कहिये, क्योंकि
हमार महायक और पुत्रपुत्र इत है। शुक्रदेव जी बोले—हे
राजा। मैं उपसेन क भाइ दन्त ही कया कहता हूँ कि उतने बार
वट और छ धेटियों थीं मो हनें कर्मों को व्याह दी, साय
दरकी हुई जिसने होन स कर्मों को प्रमनता हुई और
र भी दश पुत्र ध पर मर स कर्मों का उडा था, जब रा म
से यह उपाधि करन लगाई नार = जाय छोटे कर्मों से
परुड लाव और पहार का मर न मूँ = मार, कहे
होएँ तिनकी छाती पर कर्मों को जी निकल
कोई न निकलने पाव कर्मों को लटकों
दुष्ट यह कस, ग्रन्थ का लो है वश, को
आया है जिसन सायन को मरया है।

उसे बुलाकर बहुत सा समझाया पर इसका कहना कम क जी में कुछ भी न आया, तब दुःख पाय पड़नाय के रहने लगा कि ऐम पूत होने स मैं अपूत ही क्यों न हुआ, कहत हे जिम समय कुपूत घर मे आता है निसी समय यश धर्म जाता है । जय कस आठ वर्ष का हुआ तब मगध दश पर चढ गया । वहाँ का राजा जरासन्ध बडा योधा था तिमस मिल इससे मलयुद्ध किया, तो उसने कस का बल लखि लिया, तब हार मान अपनी दो छोटी बेटियाँ व्याह दीं—उनको ले पहिले मथुरा मे आया और उपमेन से वैर बढ़ाया । एक दिन कोपकर अपन पिता मे बोला कि तुम राम नाम रहना छोड दो, और महान्ध ना जप करो । इसने कहा—मेरे तो कर्त्ता दुख-दुर्त्ता वही हे जो उनको नहीं भजूँगा तो अपर्मा हो कैसे भयसागर पार हूँगा । यह सुन कस न सुनसाय बाप को परुड कर सारा राज्य ले लिया, आर नगर मे डोडी फेर दी कि कोई यज्ञ, दान, तप, धर्म और गम का नाम लंने न पावै । एसा अधर्म बढ़ा कि, सौ ब्राह्मण आर हरि न भक्त दुःख पाने लगे और धरती अति बोझ से भरने लगी । जय कस सय राजाओं का राज्य ले चुका तब एक दिन अपना बल ले राजा इन्द्र पर चढ चला, तहाँ मत्री ने कहा कि महाराज इन्द्रामन दिन तप किये नहीं मिलना, आप बल का गर्व न करिय वरुगे गर्व ने रावण, बुम्भरुण को कैसा रो दिया कि जितन कुल मे एक भी न रहा ।

इनकी कथा कड शुरूमे जो राजा परीक्षित से कहने लगे कि राजा जय पृथ्वी पर अति अधर्म होने लगा तब पृथ्वी दुःख पाय,

पराय गाय का रूप घना, टकारती देवलोक में गई और इन्द्र की
 ममा में जा शिर झुकाय उमने अपनी सत्र पीर कही कि
 महाराज ससार में असुर अति पाप करने लगे तिनके टर में
 धर्म तो उठ गया यदि मुझे आना हो तो नरपुर छोड़ रमातल
 को जाऊँ । तत्र इन्द्र सत्र देवनाया का माथ ले ब्रह्मा के पास गये ।
 ब्रह्मा सुन सत्र को मन्देंद्र जी क निकट ले गये, महादेव भी सब
 को साथ ले चढ़ा गये जहाँ क्षीर-समुद्र में नारायण सो रहे ।
 उनको सोते जान ब्रह्मा, इन्द्र, इन्द्र सत्र देवताओं को माथ ले
 सडे हा हाथ जोड़ प्रिनती कर देव स्तुति करने लगे—महाराजा-
 प्रिराज ! आपकी मद्रिमा कौन कहि सकेँ, मत्स्थरूप हो वेद इन्द्रत
 निकाले, रुच्छपरूप उन पीठ पर गिरि वारण किया, वाराह वन
 भूमि को दाँत पर रख लिया, धामन होके राजा बलि को छला,
 परशुराम अत्रार ले क्षत्रियों को मार पृथ्वी रुण्यप मुनि को दी,
 रामात्रार लिया तत्र महा दुष्ट रावण का वध किया, और जत्र-जत्र
 तुम्हारे भक्तो को दैत्य दु स दते हैं तत्र-तत्र आप प्रिनती रक्षा करते
 हैं । नाथ ! अत्र कम क सतान में अति व्याकुल हो पुकार करती
 हे तिमकी वग सुधि लीजे, असुरा को मार साधुओ को सुख दीने,
 ऐसे गुणगाय देवनाओ ने कहा तत्र आकाशनागी हुई, सो ब्रह्मा
 वेप्रताओ को समझाने लग यह जो वाणी हुई सो तुम्हे आज्ञा दी
 है कि तुम सत्र देवी देवना त्रजमण्डल जाय मथुरा नगरी में जन्म
 लो, पीछे चार स्वरूप धर हरि भी अवनार लेंगे, वसुदेव के घर
 देवकी की कोख में, और बाल लीला कर नन्द यशोदा को सुख
 देंगे । इसी रीति से जत्र ब्रह्मा ने बुझा कर कहा तत्र सुर मनि

विन्नर गन्धर्व सत्र अपनी स्त्रियों समेत जन्म ले ले प्रनमएल
 में यदुवशी और गोप कहाये । और जो चारों वेद की श्रुचाँ धीं
 सो ब्रह्मा से कहने लगीं कि हम भी गोपी हो ब्रजमें अवतार ले
 वासुदेव की सेवा करें इतना कह वे भी ब्रज में आई और गोपी
 कहलाई । जत्र सत्र देवता मथुरापुरी में आ चुके तब क्षीर-स्सुद्र में
 हरि विचार करने लगे कि पहिले तो लक्ष्मण हो बलराम, पीछे
 वासुदेव हो मेरा नाम, भरत प्रद्युम्न शत्रुघ्न अतिशुद्ध और सीता
 सुमिगणी का अवतार लें ।

देवकीविवाह, बालकवध

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा
 —हे महाराज ! कस तो इस अनीति से मथुरा में राज्य करने
 और उपसेन दु स भरने लगा । देवक जो कस का चाचा था उस
 की कन्या देवकी जत्र व्याहने योग्य हुई तत्र उमन जा कस से
 कहा कि यह लडकी किमको दें ? वह बोला सूरसेन क पुत्र
 वसुदेव को दीजिय । इतनी बात सुनत ही देवक ने एक ब्राह्मण को
 बुलाया शुभ लग्न मुहूर्त ठहराय सूरसेन क घर टीका भेज दिया ।
 तत्र तो सूरसेन भी बड़ी धूमधाम से बरात ले सब दश-दश क
 नरेश साथ ले मथुरा में उसुद्व को व्याहने आये, बरात नगर क
 निकट आई, सुत्र उपमन देवक और कस अपना दल ले आगे बढ
 नगर में ले गये, अति आश्चर्य मान से प्रगौनी कर, जनवामा दिया ।
 मिलाय पिताय सत्र बरातियाँ को मडे क नीचे ले जा बैठाया
 और व क की त्रिपि से कस ने वसुदेव को कन्यादान दिया । तिसके

तुम में पन्द्रह सड़क घोड़े, चार हजार छापी, अठारह मौ रथ, मन्गी अनेक दे कश्चन के बाल घस आम्रुषण रत्नजटित से भर अनगिनत सिंघे, और मन बरानियों को भी अलङ्कार सलिन गे पहिराय सर मिल, पहुँचाने को गये । निम समय देवराणी ई कि अरे कस जिसको तू पहुँचा चला है तिमका आठवाँ गर्भ का काल उपजेगा, उसके हाथ तरी मौत है । यह सुने ही कम डर मारे कपने लगा और क्रोध कर दक्की के कोंटे पर ड रथ से नीचे खँच लाया और गड्ढा हाथ में ले दौत पीस पीस पहने लगा कि जिम पेड को जट ही म उगाडिये निममे फूल फल काहे को लगेगा । अब इमी को मारुँ तो निर्भय राज्य करुँ, यह देव सुन वसुदेव मन में कहने लगें कि इस मूर्ख ने सन्ताप दिया । यह पुण्य और पाप नहीं जानता है । जो मैं अब क्रोध करता हूँ, तो कार्य सिगडेगा, निमम इस समय नमा करना ही योग्य है ।

चो०-जो पैरी खँच नलवार । करे माधु निसरी मजुदार ॥

ममक मूढ मोई पत्रनाय । जैसे पानी आग तुम्हाय ॥

यह मोच ममक वसुदेव कम के सन्मुख जा हाथ जोड़ विनती कर कहने लगे कि सुनो पृथ्वीनाथ तुम सा बली समार म कोई नहीं और मन तुम्हारी छाँह तन बमते ह । ऐसे शूर हो खी पर शम्भ करना यह अनि अनुचित है, और वलिन क मारने से महापाप होता है, तिस पर भी मनुष्य अधर्म तो कर जो जान कि में कभी नहीं मरुँगा । उस समार की तो यही रीति है, अगर जन्मा उधर मरा, शिरोड यत्न से पाप पुण्य कर कोई इस दह को पोषे पर यह कभी अपनी न होयगी और धन बौध

राज्य भी न छोड़ेगा काम, इसमें मरा क्या मान लीन और अपनी अथवा आधीन गहिन को छोड़ दीजै, इतना सुन कर अपना काल जान घररा कर और भी भुँभलाया । तब वसुध्व सोचने लगे कि यह पापी तो असुरबुद्धि किए अपना हठ की टेक पर है । जिससे इसका हाथ में यह बने सो उपाय किया चाहिये । ऐसे विचार मन में रहने लगे अब तो इसमें यों कह देवकी को उचार्कें कि जो पुत्र मर होगा सो तुम्हें दूँगा । पादें किसन देगी है लड़का हो न होय, कि यही दुष्ट मरे, या अग्रसर तो ठहै फिर समझी जायगी । इस भाँति मन में ठाठ वसुध्व ने कम से कहा—महाराज ! तुम्हारी मृत्यु इसका पुत्र प हाय न होगी क्योंकि मैंने एक बात उद्हराई है कि त्पकी प जितने लड़के होंगे तितने मैं तुम्हें ला दूँगा । यह वचन मने तुम को दिया, ऐसी बात जब वसुध्व ने कही तब ममक के कस न मान ही और देवकी को छोड़ कहन लगा—ए वसुध्व ! तुमने अच्छा विचार किया जो एमे भारी पाप से मुझे बचा लिया । इतना कह निदा किया और अपने घर गये ।

कितन एक दिन मथुरा में रहत भये जब पहला पुत्र देवकी प हुआ, तब वसुध्व ले कस पै गय आर रोता हुआ लड़का आगे घर दिया । देवत ही कम ने कहा, वसुध्व ! तुम बड़े मृत्युवादी हो मैंने आज जाना क्योंकि तुमने मुझ से कपट न किया । निर्मोही हो अपना पुत्र ला दिया इससे डर मुझे कुछ नहीं है यह बालक मैंने तुम्हें दिया । इतना सुन बालक ले दृष्टबद कर वसुध्व जो तो अपने घर आये और उसी समय नारद मुनि जी न

जाय कस से रहा—राजा ! तुमने यह क्या किया जो बालक
 उल्टा फेर दिया, क्या तुम नहीं जानते कि वसुदेव की सेवा करने
 को सत्र देवताओं ने ब्रज में आय जन्म लिया है, और दवली के
 आठों गर्भ में श्रीकृष्ण जन्म ले सत्र राक्षसों को मार भूमि
 का भार उतारेंगे। इतना कह नारद मुनि ने आठ लकीरें खींच
 गिनवाईं जत्र आठ ही आठ गिनती में आईं तत्र डर कर कस ने
 लडके समेत वसुदेव जी को बुलाय भेजा नारद मुनि तो यों
 समुत्थाय दुम्हाय चले गये और कस ने वासुदेव से बालक ले मार
 डाला। ऐसे जत्र २ पुत्र हुये तत्र २ वसुदेव ले आये और कम
 मार डाले, इसी रीति से छ बालक मारे तत्र सातवें गर्भ में शेषरूप
 जो श्रीभगवान् तिन्हों न आ बाम किया। यह कथा मुन राजा
 परीक्षित ने शुकदेव मुनि से पूछा महाराज ! नारद मुनि जी ने जो
 अधिक पाप करवाया तिमका व्योरा समझा कर कहो, जिससे
 मेरे मन का सन्देह जाय। श्री शुकदेव जी बोले—राजा ! नारद जी
 ने तो अच्छा विचार कि यह अधिक अधिक पाप करे तो
 श्रीभगवान् तुरन्त ही प्रकट होयें ॥

गर्भस्तुति

फिर शुकदेव जी राजा परीक्षित से कहने लगे कि राजा जैसे
 गर्भ में हरि आये और ब्रह्मादिक ने गर्भस्तुति करी और दनी
 जिस भाँति बलदेव जी को गोदुल ले गईं तिसी रीति से कथा
 कहता हूँ। एक दिन राजा कस अपनी समा में आय बैठा और
 जितने दैत्य उसके धे उनको बुलाकर कहा सुनो सत्र देवता पृथ्वी

इस भौंति माया को समझाय श्रीनारायण बोले कि तू तो पहले जाकर यह कार्य करके नन्द के घर में जन्म ले पीछे वसुदेव के यहाँ अवतार ले, मैं भी नन्द के घर आता हूँ। इतना सुनते ही माया भट मथुरा में आई और मोहनी का रूप बन वसुदेव के गह में पैठ गई।

चौ०—जो छिपाये गर्भ हर लिया। जाय रोहिणी को सो दिया ॥

जामें सत्र पहिला आधान। भये रोहिणी के भगवान ॥

इसी रीति से श्रावण सुदी चौदस बुधवार को बलदेव जी ने गोकुल में जन्म लिया और माया ने वसुदेव देवकी को जा म्बल दिया, कि मैंने तुम्हारा पुत्र गर्भ से जाय रोहिणी को दिया है, सो किसी बात की चिन्ता मत कीजो। सुनते ही वसुदेव देवकी जाग पडे और आपस में कहने लगे यह तो भगवान् ने भला किया पर कस को इसी समय जताना चाहिये, नहीं तो क्या जानिये पीछे क्या दुःख द, यो सोच समझ रखवालों से बुलाकर कहा। उन्होंने कस को जा सुनाया कि, महाराज! देवकी का गर्भ अधूरा गया बालक कुछ न पूरा भया। सुनते ही कस घबरा कर बोला कि तुम अबकी बेर चौकसी करियो क्योंकि मुझे आठवें गर्भ का डर है जो आकाश बाणी कह गई है।

इतनी कथा कह शिशुकदेव जी बोले—हे राजन्! बलदेव जी तो यो प्रगटे और जब श्रीकृष्ण देवकी के गर्भ में आये तभी माया ने जा नन्द की रानी यशोदा के पेट में बास लिया। दोनों गर्भ से थीं कि एक पर्व में देवकी यमुना नहाने गई, वहाँ मयोग से

यशोदा भी ध्यान मिली तो आपस में दुर्योधन की चर्चा चली निदान यशोदा ने द्रुपदी को बचन दे कहा कि तेरा बालक में रसतूंगी अपना तुझे दूँगी। ऐसे बचन दे यह अपने घर आई और वह अपने आई। जय कर्म ने जाना कि द्रुपदी का आठवाँ गर्भ रहा, तब जा वसुदेव का घर घेरा चारों ओर नैत्यों की चौकी बैठा दी और वसुदेव को बुलाकर कहा, कि अब तुम मुझ से कपट मत सीजो। अपना लड्डा ला दीजो तब तो मैंने तुम्हारा ही कहना मान लिया था।

ऐसे रहे वसुदेव द्रुपदी व बेडी हतकड़ी पहिराय एक कोठे में मुँदकर ताले पर ताले दे निज मन्दिर में आ, मारे डर के उपास कर सो रहा। फिर भोर होत ही वहीं गया, जहाँ वसुदेव द्रुपदी के, गर्भ का प्रकाश देख बहने लगा कि इस यमगुफा में मरा काल है, मार तो डालूँ पर अपयश से डरता हूँ, क्योंकि अति बलवान् हो स्त्री को हनना योग्य नहीं, भला इसका पुत्र ही को माँगा। यों कह बाहर आ गज, सिंह, श्वान और अपने बड़े-बड़े योद्धा वहाँ चौकी को रसाये और आप भी नित चौकसी कर आये पर एक पल भी नल न पडे जहाँ दस आठ पहर चौसठ घड़ी कृष्ण-रूप काल ही दृष्टि आय तिसरे भय में रात दिन चिन्ता में गँवाये।

इधर कस नी नो यह दशा थी, उधर वसुदेव और द्रुपदी पूरे लिनो महाकष्ट में श्रीकृष्ण ही को मनाने के कि इसी बीच भगवान् न आ उन्हें स्वप्न दिया और इतना रहे उनके मन का शोच दूर किया—हम वग ही जन्म ले तुम्हारी चिन्ता मेटने हैं, तुम अब मत

पट्टिनाओ। यह सुन वसुदेव-देवकी जाग पड़े तो इतना मे गता म्द, इन्द्राणिक मत्र च्चता अपन-अपने विमान अधर म छोड अलग रूप, उन वसुदेव क गृह मे आये ओर हाथ जोड-जोड, उ गाय-गाय, गर्भम्भुति करन लगे। निम समय उनको तो किमी ने न दग्ग पर वद की ध्वनि मत्र ने सुनी। यह अचरज दग्ग मत्र गग्गाले अचम्भे मे रहे ओर वसुदेव देवकी को निक्षय हुआ, कि भगवान वेग ही हमारे पीर हरेगे।

श्री कृष्ण-जन्म, और कन्या-ग्रहण

श्रीशुकुन्व जी योग—राजा जिस समय श्रीकृष्णचन्द्र जन्म लेने लगे, निम काल मत्र ही क जी में गेमा आनन् उपजा कि दु ग्य नाम को भी न रहा। हर्ष म यन उपवन लगे हरे हो-दो फलन पृलने, नदी नाजे सरोवर भरने, तिन पर भाँति-भाँति क पक्षी फलोलें करने और नगर-नगर, गाँव-गाँव, घर-घर, मङ्गलाचारहोन, ब्राह्मण यज्ञ रचन, दशा दिशा क दिग्पाल हर्षन, बादल ब्रजमण्डल पर फिरने, देवता अपने-अपन विमानो म बैठ आकाश से फल उर्पान, त्रिगात्र, गरुड, चारुण, डोल ममामे मेरी प्रजाय-प्रजाय गुण गान लग, और एक ओर उरेशी आदि मत्र अम्भरा नाच रही थीं कि ऐस समय भाग वदी अष्टमी बुग्गार रोहिणी नक्षत्र मे आगी रात को श्रीकृष्णचन्द्र ने जन्म लिया, ओर मेग्गर्ण, चन्द्रमुख, कमल-नयन हो, पीताम्बर काछे मुकुट धरे, वैजन्ती माल और रत्न-जटिन आमूपण पहरे चतुर्भुजकूप किये शङ्ख चक्र गता पद्म लिये वसुदेव देवकी को दर्शन दिया। दस्तते ही अचम्भे मे हो उन दोनों ने ज्ञान

से विचारा तो आदि पुत्र्य को जाना, तब हाथ जोड़ विनती कर कहा—हमारे बड़े भाग्य जो आपने दर्शन दिया, और जन्म मरण का निरडा किया।

इतना कह पहिली कथा मत्र सुनाई, जैसे-जैसे कस ने दुःख दिया था। तब श्रीकृष्णचन्द्र बोले—तुम अब किमी बात की चिन्ता मन में न करो, क्योंकि मैं तुम्हारे दुःख दूर करने ही को अनार लिया है, पर इस समय मुझे गोकुल पहुँचा दो, और इमी विरियाँ यशोदा व लडकी हुई है, सो रम को ला दो, अपन जाने का कारण कहना है सा सुनो।

दो०—नन्द यशोदा तप कियो, मोही सा मन लाय।

दरयो चाहत ताल सुख, रहो कडू दिन जाय ॥

फिर कस को मार आन मिलूँगा, तुम अपन मन में धैर्य धरो, ऐसे वसुदेव दवकी को ममकाय श्रीकृष्ण तालक बन रोने लग, और अपनी माया फैला दी। तब तो वसुदेव दवकी का ज्ञान गया और जाना कि हमारे पुत्र भया। यह समक दश महत्र गाय मन मे सङ्कल्प कर लडक को गोद में उठा छाती से लगा लिया, उसका मुत्र देल-दग्य दोनों लम्बी माँसे भर-भर आपस मे कहने लगे—जो किमी रीति से इस लडक को भगा दीजै तो कस पापी के हाथ से बचे। वसुदेव बोले—

चो० विधना विन राख नहिं कोई। कर्म लिखा सोइ फल होइ ॥

तब कर जोर दवकी कहे। नन्द मित्र गोकुल मे रहे ॥

पीर यशोदा हरे हमारी। नारि रोहिणी तहाँ निहारी ॥

इस तालक को वहाँ ले जाओ, या सुन वसुदेव श्रुत्वा कर

कहने लगे कि इस कठिन बन्धन से छूट कैसे ते जाऊँ ? ज्यों इतनी बात कही त्यों सत्र बेड़ी हथकड़ी खुल पड़ी । चारों ओर के किवाड़ खुल गये, पहल्ये अचेत नीदवश भये । तब तो वसुदेव जी ने श्रीकृष्ण को सूप में रग शिर पर र लिया और भटपट ही गोकुल को प्रस्थान किया ।

सो०—उपर तसे देव, पीछे सिंह जु गुञ्जरे ।

शोचत है वसुदेव, यमुना देखि प्रवाह अति ॥

नती तीर सडे हो वसुदेव प्रचारने लगे कि पीछे तो सिंह बोलता है, और आग अथाह यमुना बह रही है अब क्या करूँ ऐसा वह भगवान का ध्यान धर यमुना में पड़े । ज्यों ज्यों जात थ, त्यों त्यों नती बढती थी तब नारु तरु पानी आया तब तो ये निपट प्रगय, इनको व्याकुल जान श्रीकृष्ण ने अपना पाँव बढाय हुँकार लिया । चरण छूते ही यमुना थाह हुई वसुदेव पार हो तन्द के पोर पर जा पहुँचे । वहाँ किवाड़ खुले पाये भीतर धस क दर्रे तो सत्र सोय पडे हैं । देवी ने ऐसी मोहनी डाली थी कि यशोदा को लडकी के होने की भी सुधि न थी । वसुदेवजी ने कृष्ण को तो यशोदा के निकट सुला दिया और कन्या को ले चल अपना पन्थ लिया । नती उतर फिर आये जहाँ पैठी देवकी शोचनी थी तहाँ कन्या दे वहाँ की कुशल रही । सुनत ही देवकी प्रसन्न हो बोली—हे स्वामी ! हमे कस अब गार डाले तो कुछ चिन्ता नहीं क्योंकि इस दुष्ट व हाथ से पुत्र तो बचा ।

इतनी

जी राजा परीक्षित से कहें

लगे कि जय उसुदय लडकी को ले आये नय त्रिवाड ज्य। क त्या भिड गये, और दोना न हथकडियाँ बेडियाँ पहर ली, कन्या रो उठी। रोने की धुनि सुन पहरये जाग नो अपने-अपन शम्भ लं-लें सायथान हो लगे तुषक छोडन, तिनका शब्द सुन लगे हाथी बिवाडन, सिंह धहाडन और कुत्ते भौंकन। निमी समय अधेरी रात क बीच पर्यत मे एक रंगराल न हाथ जोड क कम मे कहा--महाराज! तुम्हारा पैरी उपजा, यह सुन कम मूर्च्छित हो गिरा।

कम-उपद्रव

शालक का जन्म सुनत ही कम टगता काँपता उठ गडा हुआ, और गड्ढ हाथ में ले गिरता पडता गौडा। छटे वाला पमीने में डूबा धुकुड धुकुड कगता जा रहिन क पास पहुँचा। जय उमर हाथ से लडकी छीन ली, नय वह हाथ जोड बोली--अप भैया! यह कन्या नरी भानजी है इस मन मार, यह मरी पट पोडनी है। मारे ह शालक छ तिनका दुख मुझे अनि सताता है, तिन काज कन्या को मार क्या पाप रडाना है। क स बोला--जीनी लडकी तुम्ह न दूँगा, जो इन्ने ल्याहेगा सो मुझ मारगा। इनका कह राहर आ ज्यों चाह कि फिंगर कर पन्थर पर पटक त्योही हाथ स छूट कन्या आकाश को गई और पुहार क यह कह गई--अरे क स मरे पटकन स क्या हुआ? तरा पैरी कर्ती जन्म ल चुका अप नू न उकेगा।

यह मुन कम अत्रना पढ़ना नहीं आया जहाँ वसुदेव दवकी ध, आत ही उतर हाथ पाँव की हथफडी बेडी फाट दी और हाथ जोड कर कहन लगा कि मैंन बडा पाप किया जो तुम्हारे पुत्र मारे । यह कलक कैसे छूटगा ? किस जन्म में मेरी गति होगी ? तुम्हारे बचना भूँटे हुए चिन्हाने कहा था कि त्रेकी फ आठर गर्भ में लडका होगा सो त हुका लडकी हुई, वह भी हाथ स छूट स्वर्ग को गई । अब क्या कर मरा दाप जी मे मत राखो क्योंकि कर्म का लिया कोई भेट नहीं मरना । इस समार मे आये स जीना-भरना, सयाग-वियोग मनुष्य का नहा छूटना, जो क्षानी ए सा मरना जीना समान ही जानत हे आर अभिमानो मित्र शत्रु पर मानत हे । तुम तो बड माधु मत्यवाणी हो जो हमार धतु अपन पुत्र ले आये ।

मेमे क जय कम तार तार हाथ जोडन लगा नर प्रमुत्र जी गेले--महाराज ! तुम सच कहत हा इसमे तुम्हारा कुछ लोप नहीं, रिशता ने यही हमार कर्म में लिया था । यों मुन कम प्रसन्न हो अनि दित मे वसुदेव दवकी को अपन घर त आया और भोचन कराय वत्र पहिराय बडे आर भाव मे दोनों को फर वहीं पहुँचाय दिया आर मन्त्री का तुला कर कहा कि दवी कह गई है तरा पैरी जग मे जन्मा । इससे अब दवनाओं को जदा पाओ तहाँ मारो, क्योंकि उन्होन मुक्तसे भूँठी रात रही थी कि आठवें गर्भ मे तेरा शत्रु होगा । मन्त्री बोला--महाराज ! उनका मारना क्या बडी जान है व तो जन्म क भिगारी ह । जय आप कोपियेगा तभी व भाग जायेंगे, उनुकी क्या मामर्थ्य है,

जो तुम्हारे मन्सुग्ग हों, ब्रह्मा आठ पहर ज्ञान ध्यान में रहना है, महादेव भाग धतूरा खाए, इन्द्र का न कुछ तुम पर बशाय, रहे नारायण सो समाम नहीं जानै लक्ष्मी के साथ रहते हैं सुख माने ।

कम बोला--नारायण को कहीं पावें और किस विधि जीतें सो कहो । मंत्री ने कहा--महाराज ! जो नारायण को जीता चाहे तो जिनके घर में आठ पहर उनका धाम है तिन ही का शत्रु विनाश करो, ब्राह्मण, वैशाख, योगी, यती, तपस्वी, संन्यासी, वैरागी आदि जितने हरि के भक्त हैं तिनमें लडके से ले बूढ़े तक एक भी जीता न रहे यह सुन उस ने प्रधान से कहा--तुम मरने जा मारो । आज्ञा पाकर मंत्री अनर राजस साथ ले विदा हो नगर में जा गा, ब्राह्मण, बालक और हरिभक्तों को छल-छलकर हूँट हूँट मारने लगा ।

कृष्ण-जन्मोत्सव

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले--महाराज ! एक समय नन्द यशोदा ने पुत्र के लिए उड़ा तप किया । नहीं श्री नारायण आय बर लिया कि तुम्हारे यहाँ जन्म लेंगे । जब भाग्ये बड़ी अष्टमी बुधवार को आधी रात के समय श्रीकृष्ण आये, तब यशोदा ने जागत ही पुत्र का मुख देख नन्द को बुलाकर आनन्द मना और अपना जीवन सुफल जाना । भोग होत ही उठ नन्द जी न पण्डित ज्योतिषियों को बुला भेजा, वे अपनी अपनी पोथी पत्रे ले आये, कि जो आसन व आर मानसे बैठाया । उन्होंने शास्त्र की विधि

विश्व-दर्शन

। बोले—हे राजा ! एक दिन वसुदेव जी ने गर्ग
ज्योतिषी और यदुवशियों के पुगेहित धे, बुला
गोकुल जा लडक का नाम रख आओ ।

डिगो गर्भ मा, भयो पूत है तादि ।

आयु पैमा बली, कहा नाम ता आडि ॥

। का पुन हुआ है सो भी तुम्हें बुलाय गये हैं ।

प्रसन्न हो चले और गोकुल के निघट जा पहुचे ।

ने नन्द जी से आ कहा कि यदुवशियों के
ने आते हैं । यह मुन नन्द जी आनन्द से ग्वाल

उठथाये । और पाटन्यर के पाँवडे डालते

पूजा कर आसन पर बैठाय, चरखामृत

कहने लगे—महाराज ! षडे भाग्य हमारे

दे घर पविा किया । तुम्हारे प्रताप से

एक हमारे, कृपा कर तिनका नाम

अपना उचित नहीं, क्योकि जो

के नाम धरने गये हैं,

की के पुत्र को

लिये गर्ग

और न जाणिये

मत करो,

साथ ही गोकुल से चले मथुरा आय कम से भद्र कर भेट दो,
कोडी = चुकाय अपनी पिता हो अपनी पाट ली ।

ज्योही यमुना तीर पै आये, त्योही समाचार सुन वसुदेव जी
आ पहुँच, नन्द जी से मिल कुशल दोम पूँत्र रुदन लगे तुम सा
सगा आर मित्र हमारा समार मे कोइ नही ज्योंकि जत्र हमे भारी
त्रिपत्ति भइ, तत्र गर्भपती रोहिणी तुम्हारे यहाँ भेज दी, उमर
लडना हुआ सो तुमन पाल बडा किया, हम तुम्हारा गुण कहाँ
तरु बगाने इनना रुट पर पृथ्वा रहो राम कृष्ण ओर यशोदा
रानी आनन्द से हें ? नन्द जी बोले--आप की कृपा से सन भन
हें, ओर हमारे जीवनमूल तुम्हारे बलदन जी भी कुशल से हें, कि
जिन के होते ही तुम्हारे पुण्य प्रताप से हमारे पुत्र हुआ पर एक
तुम्हार ही दुःख से हम दुःखी हैं । वसुदेव कहने लग--मित्र !
पिताता से कुल न बस आये, कर्म की रेखा किमी से मटी न जाय,
इस से समार मे आय दुःख पीर पाय, कौन पढ़ताय, ऐसा ज्ञान
जनाय न रहो ।

चौ०--तुम घर जाहु रेग आपन । रीन्द कम उपद्रव घने ॥

बालक हूँद मँगावे नीच । हुइ साधु पर जाकी मोच ॥

तुम तो सन यहाँ चले आय ही, ओर कस व दूत हूँदत फिरत
हें । न जानिये कोइ दुष्ट जाय गोकुल मे उपाधि मचाय । यह सुनत
ही नन्द जी अकुला कर सन को साथ लिए शीघ्रत मथुरा से
गोकुल को चले ।

विश्व-दर्शन

श्रीशुक्रदेव जी बोले—हे राजा ! एक दिन वसुदेव जी ने गर्ग मुनि को जो बड़े ज्योतिषी और यदुवशियो के पुरोहित थे, बुला कर कहा कि तुम गोकुल जा लडके का नाम रख आओ ।

दो०—गई रोहिणी गर्भ सो, भयो पूत है ताहि ।

कित्ती आयु कैमा बली, कहा नाम ता आहि ॥

और नन्द जी का पुत्र हुआ है सो भी तुम्हें बुलाय गये हैं । सुनत ही गर्ग मुनि प्रसन्न हो चले और गोकुल के निकट जा पहुँचे । तिसी समय किसी ने नन्द जी से आ कहा कि यदुवशियो के पुरोहित गर्ग मुनि जी आते हैं । यह सुन नन्द जी आनन्द से ग्वाल बाल सग कर भेंट ले उठधाये । और पाटम्बर के पाँवडे डालते बाजे गाजे से ले आये । पृजा कर आमन पर बैठाय, चरय्यामृत ले, स्त्री पुरुष हाथ जोड कहने लगे—महाराज ! बड़े भाग्य हमारे जो आपने दया कर दर्शन दे घर पवित्र किया । तुम्हारे प्रताप से दो पुत्र हुए हैं, एक रोहिणी के एक हमारे, ठपा कर तिनका नाम धरिये । गर्ग मुनि बोले—ऐसे नाम रखना उचित नहीं, क्योंकि जो यह बात फेने कि गर्ग मुनि गोकुल में लडको के नाम धरन गये हैं, और कस सुन पावै सो यह यह जानेगा कि देवकी के पुत्र को वसुदेव क मित्र के यहाँ कोई पहुँचा आया है । इसी लिये गर्ग पुरोहित गया है, यह समक मुके पकड मँगावेगा । और न जानिये तुम पर भी क्या उपाधि लावै, इससे तुम फैलाव कुछ मत करो, चुपचाप घर में नाम धरवा लो ।

नन्द बोले—गर्ग जी ! तुमन सच कहा । इतना कह घर व भीतर ले जाय बैठाया । तब गर्ग जी ने नन्द जी से दोनो की जन्म-तिथि और समय लग्न साथ नाम ठहराय कहा—सुनो नन्द जी ! वसुदेव की नारी रोहिणी क पुत्र के तो इतने नाम होयेंगे—सरूपण, रेवतीरमण, बलदाऊ, बलराम, कालिन्दीभेदन, हलधर, बलवीर । और कृष्ण-रूप जो तुम्हारा लडका है उसने नाम तो अगणित हैं, पर किसी समय वसुदेव क यहाँ जन्मा इमसे वासुदेव नाम हुआ । और मेरे विचार में आया है कि, ये दोनो बालक तुम्हारे चारो युगो में जन जन्मे हैं तब साथ ही जन्मे हैं ।

नन्द जी बोले—इनके गुण कहो । गर्ग मुनि ने उत्तर दिया—ये दूसरे विधाता हैं । इनकी गति कुछ जानी नहीं जाती, पर मैं यह जानता हूँ, कस को मार भूमि का भार उतारेंगे । ऐसे कह गर्ग मुनि चुपचपात चले गय, और वसुदेव से जा सन समाचार रहे ।

आगे दोनो बालक गोकुल मे दिन २ बढ़न लगे, और बाल-लीला कर कर नन्द यशोदा को सुख देने लगे । नीले, पीले, भगले पहने, माथे पर छोटी छोटी लटुरियाँ बिलारी हुई, चत्र गडे बाँधे, कठले गले में डाले, खिलौने हाथों में लिये, खेलत आँगन के बीच घुटनों बल चल २ गिर गिर पडें आर तोतली २ घातें करें । रोहिणी और यशोदा पीछे लागी फिरें, इसलिये कि वहाँ लडके किसी से डर ठोकर सा न गिरें । जब छोटे २ बड़डों और बद्धियाओं की पूँछ पकड २ उठें और गिर २ पडें, तब यशोदा और रोहिणी अति प्यार से उठाय छाती से लगाय दूध पिलाय भाँति २ के लाड लडावें ।

जब श्रीकृष्ण घड़े मये तो एक दिन ग्वाल वाल नाथ ले घन में दधि मासन की चोरी को गये ।

चौ०—सूने घर में ढूँढें जाय । जो पावें सो देयें लुटाय ॥

जिनको घर में सोते पावें तिनकी धरी टँकी दहेड़ी उठा लावें जहाँ छीके पर रक्सा देखें, तहाँ पीढे पर पटरा, पटरे पै उलूखल धर साथी को रगड़ा कर उसक ऊपर चढ उनार लें, कुछ खावें और कुछ लुटाय दें, ऐसे गोपियो पे घर घर नित्य चोर नर आवै ।

एक दिन सत्र ने गता किया, और गह में मोहन को आने दिया । ज्यो घर भीतर पैठा चाहें, नि मासन दही चुरावें, तो गोपियो ने जाय पकड कर कहा—नि ० आते ये निशि भोर, अत्र कहीं जाओगे मासन चोर । यां कह सत्र गोपी मिल कन्हैया को लिये यशोदा के पास उलहना देने चलीं, तत्र श्रीकृष्ण ने गेसा छल किया कि उसके लडके का हाथ उसे पकडा दिया, और आप दौड अपने ग्वाल वालो का सग लिया । वे चलीं ० नन्दरानी के निरुद आय पावो पड बोलीं—जो तुम धुरा न मानो नो हम कहें, जेसी कुछ उपाधि कृष्ण ने ठानी है ।

दो०—दूध दही मासन मही, वचै नहीं घन साम् ।

ऐसी चोरी करत हैं, फिरत भोर अरु साम् ॥

जहाँ कहीं धरा पाते हैं, तहाँ से निधडक उठा लाते हैं, कुछ खाते हैं और लुटाते हैं, जो कोई इनके मुख में दही लगा कर कहते हैं, तूनेई तो लगाया है ।

तो ये । आज हमने पकड पाया. x

दिराने लाई हं । यगाना बोली—बहिन तुम किसका लडका पकड़ लाई, कल मे नो मरा खबर कन्हाई घर स बाहर भी नहीं निकला । ऐसा ही सब बोलनी हो ? यह सुन आगे अपना हो बालक हाथ में दग, न हँस कर लजाय रही, तब यशोदा जी ने कृष्ण को बुलाय क रूग—पु। तुम किसी न यहाँ मन जाओ जो चाहिये सो घर में मे ले ग्याओ ।

चो०—सुन के कान्ह कहत तुनराय । मन मैया तू इन्ह पनियाय ॥

भूठी गोपी भूठी बोलें । मर पीड़े लागी डोलें ॥

कभी दोहनी ब्रह्मा पकड़वाती हैं । कभी घर की टहल कराती हैं, मुझे द्वारे ग्यवाली बंठाये अपने काज को जाती हैं । भूठ मूठ प्राय तुम मे बातें लगानी हैं । यह सुन गोपी हरि मुख देख देख मुन्करा कर चली गई ।

प्रागे एक दिन कृष्ण बलराम सखाओ क सग घर मे ग्वेलते थ, कि जो कान्ह न मट्टी खाई, तो एक सखा ने यशोदा से जा लगाई । यह तोष कर हाथ में छड़ी ले उठ धाई, माँ को रिस मरी आती देख मुँह पोज कर टर कर खडे हो रहे, इन्होने जाते ही कहा, क्यों रे तूने भाटी क्यों खाई ? कृष्ण डरते काँपते बोले—माँ ! तुम स निम्न कहा ? ये बोली तेरे सखा न ? तब मोहन ने कोप कर सखा से पूँछा—क्या रे मैंन मट्टी कर खाई है ? वह डरि कर बोला—मैया ! मैं तेरी बात कुछ नहीं जानता, क्या करूँगा ? जो कान्ह सखा से बतराने लगे, तो यशोदा ने उन्हें जा पकडा । तब कृष्ण कहने लगे—मैया तू मत रिमाय, नहीं भी मट्टी खात हैं ? वह बोली—मैं तेरी श्रटपटी बात नहीं

सुनती जो सदा है, तो अपना मुग्ध दित्वा। न्यों श्रीकृष्ण ने मुख खोला तो उस में तीन लोक नृष्टि आये तब यशोदा को ज्ञान हुआ, तो मन में कहने लागी, कि मैं पड़ी मरुत हूँ जो त्रिलोकी के नाथ को अपना सुत कर मानती हूँ।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी राजा परीक्षित ने बोले— हे राजा ! जब नन्दरानी ने ऐसा जाना, तब हृदि ने अपनी माया फैलाई, इतने में मोहन को यशोदा प्यार कर कसठ लगाय कर ले आई ।

दाम-पन्धन

एक दिन दही मथने की विरियाँ जान भोग ही नन्दरानी उठी, और मत्र गोपियों को जगाय बुलाय ले आय भांड बुहार लीप पोत अपनी मथनियाँ ले ले दही मथन लगी । तहाँ नन्द महरि भी एक बड़ा सा कोरा चम्प्रा ले गडुप पर रख चौकी विछनेनी रई मँगाय टटकी ० दहेडियाँ चाँद चाँद रामकृष्ण के लिये त्रिलोचन बैठी । तिस समय नन्द क घर में ऐसा शब्द दही मथने का हो रहा था, कि जैसे मेघ गरजना हो । इतने में कृष्ण जागे तो रो रो मीं मीं कर पुकारने लगे । उनका पुकारना किसी ने न सुना तब आप ही यशोदा क निरुद आये, और थारों डरडराय अनमने हो सुसर सुसर तुनलाय तुतलाय कहने लगे कि माँ, तुम्हे कै धेर बुलाया ? पर मुम्हे कलेऊ दन न आई, तेरा काज अरतर नहीं निगडा । इतना कह मचल पडे, रई चरुण से निकाल दोनों हाथ डाल नग मायन काड काड

फफने, आंगन लयडन आँर पाँर पटक पटक आँचल मीय २ रोत,
नर नन्दरानो वरराय मुँनताय के बोली—घेटा थद फ्या चान
निकानी है ।

बौ०—चल नट तुके करोऊ हूँ । कृपा करै अय में नहि लूँ ॥
पलिये फ्या नहि मीनो मात्र । अय तो मरी लेय धनाय ॥

निगन यशोदा न पुमनाय प्यार से पुँह चूम गोद में र्था
लिया । आँर नधि माखन रोटी गान की गिया, हरि हँस २ गाने
य नन्द महारि अँचल प आँर किग विना रही थी, इसलिये कि
मत किसी की गीठ लग ।

उम बीर एक गोपी न आ कदा कि तुम तो यहाँ बैठी हो
बहाँ चूहें पर मे सत दूध अफल गया । यद सुनते ही मट कृपा
को गोद से उगार उठ धाई आँर चार दूध चचाया । यहाँ कान्द
इही मही के भाजन फोड गई तोट माएन भरी कमोरी ले गवाल
वालौ म आय । एक डनृएन आँधा घरा पाया निम पर जा बैठे ।
आँर चारा आँर मगाओ को बैठाय लगे आपस में हँस २ घाँट २
माएन गान ।

इतन म यशोदा नृध उगार आय दरे तो आँगन आँर निगरे
मे दही मही की फीच हो रही है । तन तो सोच ममक हाय में
छडी ल निरुती, आँर हँडती २ वहाँ आई जहाँ श्रीकृपा मण्डली
बनाये, माएन राय खिलाय रहे ध, जान ही पीछे से जो कर
घरा, तो हनि माँ को देखने ही राँकर हा हा राय लग कहने कि
माँ गोरम किमने लुटाया, मैं नहीं जानूँ मुके छोडद । ऐस दीन
मत यशोदा हँस कर हाय से छडी डाल, आँर आनन्द में

मम हो रिम के मिस फण्ड लगाय, घर लाय कृष्ण को उतरन से बाँधने लगी । तब श्रीकृष्ण ने ऐसा किया कि जिस रस्सी से बाँधे वही छोटी होय । यशोदा ने सारे घर की रस्सियाँ मँगाई तो भी बाँधे न गये । निदान माँ को दु रिम जान आप ही बाँधाई दिये । नन्दरानी प्राँध गोपियों को रोलने की माँह दे फिर घर की टहल करने लगी ।

प्रलम्ब-वच

इतनी कथा कह चुकते जी योगे—महाराज । अब मैं शत्रु वर्गान करता हूँ, कि जैसे श्री कृष्णचन्द्र ने निन में लीला करी सो चित्त व सुनों, प्रथम प्रीष्म शत्रु आर्द, उमने आते ही सब ससार का सुग्र ले लिया, और धरती आकाश को तपाय अग्निसम किया, पर कृष्ण के प्रताप से वृन्दानन म सदा वसन्त ही रहे, जहाँ वने व वृक्षों के पत्तों पर उल्ले लहलहा रहीं, वर्या व के फूल फूले हुए निन पर भोरों के झुण्ड व झुण्ड गूँज रहे, आमों की डालियों पर कोयल कुटुफ रनी । ठण्डी व छाहीं में मोर नाच रहे, सुगन्ध लिए मीठी व पन व रही, और एक थोर वन व यमुना न्यारी हो शोभा व रही थी । तहाँ कृष्ण बलराम गाय छोड सब समा समेन आपस में अठ २ खेल खेल रहे थे कि इनने में कम का पठाया ग्वाल का रूप बनाय प्रलम्ब नाम राक्षस आया । उने दगते ही श्रीकृष्णचन्द्र ने बलराम जी को सैन से कहा ।

चौ०—अपनी सजा नहीं बल वीर । फण्ड रूप यह असुर शरीर ॥

फेंकने, आंगन लगेडन और पाँव पटक पटक आँचल रेंच २ रोने, तब नन्तरानों परराथ मुँकलाय के बोली—वेटा यह क्या चाल निमाली है ।

चौ—चल उठ तुम्हें कनेऊ दूँ । कृष्ण यह अन में नहीं लूँ ॥
पठित न्यो नहीं नीनो माय । अब तो मेरी लेय बलाय ॥

निदान यशोदा न कुमलाय प्यार से मुँह चूम गोद में ग्ठा लिया । और नधि मायन रोटी गाने को दिया, हरि हँस २ खाने थ नन्द महरि अँचल व थोट क्रिय खिला रही थी, इसलिये कि मत किसी की गीठ लग ।

उस बीच एक गोपी ने आ कहा कि तुम तो यहाँ बैठी हो बड़ा चूँटे पर मे सर दध उफन गया । यह सुनते ही मूट कृष्ण को गो स उदार उठ गई और जाऊ दूध बचाया । यहाँ पान्ह रही मदी क भाजन फोड रई नोट मायन भरी कमोरी ले ग्वाल बालों में आये । एक उनृजन आँगा धरा पाया निस पर जा बैठे । और चारा और माराआ को बैठाय लगे आपम में हँस २ घाँट २ मायन गान ।

इनने म यशोदा दूध उतार आय दलें तो आंगन और तिवारे में रही मही की कीच हो रही है । तन तो सोच समझ हाथ में ब्रडी ले निकती, आंग हँडनी २ यहाँ आई जहाँ श्रीकृष्ण मण्डली बनाये, मायन खाय गिराय रहे व, जात ही पीछे से जो कर भरा, तो हरि माँ को देगने ही रोकर हा हा खाय लगे कहन कि माँ गोरस किसने लुटाया, मैं नहीं जानूँ मुझे छोड़दे । ऐसे दीन बचन सन यशोदा हँस कर हाथ से छडी डाल, और ध्यानन्द में

मग्न हो रिम के मिस कण्ड लगाय, पर लाय कृष्ण को ऊबन से बाँधने लगी । तब श्रीकृष्ण ने ऐसा किया कि जिम रस्सी से बाँधे वही छोटी होय । यशोदा ने सारे घर की रमिसर्याँ मँगवाई तो भी बाँधे न गये । निदान माँ को दुःखित जान आप ही बँगाई दिये । नन्दरानी बाँध गोपियो को गोलने की सोच दे फिर घर की टहल करने लगी ।

प्रलम्ब-वध

इतनी कथा कह चुकते जी योगे—महाराज ! अब मैं शत्रु वर्णन करना हूँ, कि जैसे श्री कृष्णचन्द्र ने तिन में लीला करी मो चित्त दे सुनों, प्रथम प्रीप्स शत्रु आई, उसने आते ही सब ससार का मुग ले लिया, और धरती प्राकाश को तपाय अग्निसम किया, पर कृष्ण क प्रताप से वृन्दावन म सदा बसन्त ही रहे, जहाँ घने ० कुड्डों क वृक्षों पर बेलें लललहा रहीं, बर्या २ के फूल फले हुए तिन पर भारों व झुण्ड व झुण्ड गूँज रहे, आमों की डालियों पर कोयल कुटुक रही । ठण्डी ० छाहीं में मोर नाच रहे, सुगन्ध लिए मीठी ० पत्रन बह रही, और एक ओर वन क यमुना न्यारी हो शोभा द रही थी । तहाँ कृष्ण बलराम गाय छोड सब सारा समेत आपस मे अनूठे २ खेल खेल रहे थे कि इतन में कम का पठाया ग्वाल का रूप बनाय प्रलम्ब नाम राक्षस आया । उमे दखत ही श्रीकृष्णचन्द्र ने बलराम जी को सैन

रहा ।

१-अपनी सारा नहीं बल वीर । कपट रूप

यारे बर को करो उपाय । ग्वाल रूप मारो नहीं जाय ॥

जत्र यह रात्रि रूप आपनो । तत्र तुम याही तत्क्षणा हनो ॥

इतनी बात बलदेव जी को जनाय कृष्ण जी ने प्रलम्ब को हँस

कर पास बुलाय हाथ पकड़ के कहा ।

चौ०—सज्जे नीको भेष तिहारो । भलो रूपट बिन मित्र हमारो ।

यां कह उसे साथ ले आधे ग्वालनाल जाँट लिये । और आधे

बलराम जी को दे, दो लटका को बैठाय तगे फल फूलों का नाम

बताने और पूँछने । इसमें बनाते २ कृष्ण हार, धनदेव जीत ।

तत्र कृष्ण की ओर वाले, बलदेव जी व माथियों को कंधे पर

चढ़ाय ले चले, तहाँ प्रलम्ब बलराम जी को मत्र क आगे ले भागा

और वन में जाय उसने अपनी दूँ उड़ाई । निस समय उम काले २

पहाट से राक्षस पर बलदेव जी ऐसे शोभायमान थे, जैसे

श्याम घटा पर चन्द्रमा और कुण्डल की डमक विजली सी चमकती

थी, पसीना मेह सा उर्गता था । शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से

कहा कि—महाराज । ज्यों अवेन्ता पाय वह बलराम जी को मारन

को दुधा त्यो ही उन्होंने मारे घुँमों व उँस मार गिराया ।

वर्षा-शरद ऋतु वर्णन

श्रीशुकदेव मुनि बोले—महाराज । धीष्ण की अति अनीति

देख नृप पावस प्रवण्ड पृथ्वी के पशु पक्षी जीव जन्तुओं की दया

विचार चारा और से दल वारल साथ ले लडन को चढ़ आया ।

निस समय धन जो गर्जना था सोई तो धोंसा वाजता था और

वर्षा २ की घटा जो धिर आई थी, सोई शूरवीर रात्र ४,

निके बीच पिजली की दमक शम्भ की सी चमक थी, घगपाँत ठौर २ ध्वजा सी फडराय रही थी, दादुर मोर कडवेतो की सी भाति यश बपानते धं और बडो २ बूँदों की सी भडो लगी । इस धूम-वाम से पास को आत देख, ग्रीष्म गेत छोड अपना जी ले भागा । उस काल वृन्दावन की भूमि ऐसी सुहावनी लगती थी कि जैसे शृङ्गार किये कामिनी और जहाँ तहाँ नदी, नाले, सरोवर भरे हुये तिन पर हस, सारस शोभा दे रह, ऊँचे-ऊँचे शयों की डालियाँ झूम रहीं, उनमें पिक, चातक, कपोत, कीर, वैठ कोलाहल कर रहे थे और ठाँव-ठाँव सृष्टे कुमुभे जोडे पहेरे गोपी ग्वाल झूलों पर झूल-झूल ऊँच सुरों से मलारे गाते थे । उनसे निकट जाय २ श्रीकृष्ण बलराम भी बाललीला कर २ अधिन सुग दिखाते थ । इस आनन्द से तर्पा श्चतु वीती, तत्र श्रीकृष्ण ग्वालमालो से कहने लगे—कि भैया अत्र तो सुखदाई शरद श्चतु आई ।

चौ०—सत्रको सुर भारी अत्र जान्यो । म्पाद सुगन्ध रूप पहिचान्यो ॥

निशि नक्षत्र उज्ज्वल आकाश । मानहुँ निर्गुण ब्रह्म प्रकाश ॥

चारि माम जो विरमे गेह । भये शरद निन तजे सनेह ॥

अपन अपने काजन धाये । भूप चडे तकि देश पराये ॥

वरुणलोकगमन, वैकुण्ठ चरित्र

शुकदेव जी बोले कि—महाराज ! एक दिन नन्द जी ने समय कर एकदशी व्रत किया, तिन तो स्नान, ध्यान, भजन, जप, पूजा में फाटा और रात्रि जागरण में बिनाई । जन छ घरी रात ग्ही

यागे वन को करो उपाय । ग्वान रूप मागे नहिं जग ॥

जग यह राहै रूप आपनो । तन तुम याही तत्त्व हनो ॥

इतनी वान बलदेव जी को जनाय कृष्ण जी ने प्रलम्ब को हँस

कर पास बुलाय हाथ पकड़ के कहा ।

चौ०—सगने नीको भेष निहारो । भलो कपट विन मित्र हमारा ।

यों कह उसे साथ ले आधे ग्वालमाल बाँट निय । धीरे आध

धलराम जी को दे, दो ताड़का को बैठाय लग फल फूँकों का नाम

घताने और पूँडने । इममें बनाते = कृष्ण हारे, वनदेव जान ।

तन कृष्ण की ओर घाने, बलदेव जी के साथियों को काँधे पर

बढाय ले चले, तहाँ प्रलम्ब धनराम जी को सत्र के आगल भागा

और वन में जाय उसने अपनी दद बढ़ाई । तिस समय उस कान र

पहाड से राक्षस पर वनदेव जी ऐसे शोभायमान थे, जैसे

श्याम घटा पर चन्द्रमा और कुण्डल की दमक विजली सी चमकती

थी, पसीना मेह सा गता था । शुकदेव जी न राजा परीक्षित से

कहा कि—सदागज ! ज्या अयेला पाय वर बलराम जी को मारने

को हुया न्यों ही उन्हानि मारे घूँसा व उसे मार गिराया ।

वषा-शरद ऋतु वर्णन

श्रीशुकदेव मुनि बोले—मराराज ! प्रीति की अति अनीति
 देख नृप पावस प्रचण्ड पृथ्वी व पशु पक्षी जीव जन्तुआ की दया
 विचार चारों ओर से दल बादल साथ ले लडने को चढ़ आया ।
 तिस समय धन जो गर्जना वा सोई तौ धामा वाजता था और
 वर्षा = की घटा जो फिर आई थी, सोई =

अनके बीच पिजली की दमक शख की सी चमक थी, बगर्पात और २ ध्वजा सी फराय रही थी, आदुर मोर कडखेतों की सी भाति यश बगानते ये और बडी २ बूँटों की सी भडी लगी । इस धूम-धाम में पापस को आते दर, ग्रीष्म खन छोड अपना जी ले भागा । उस काल घृन्त्यायन की भूमि ऐमी सुहाननी लगती थी कि जैसे शृङ्गार किये कामिनी और जहाँ तहाँ नदी, नाले, सरोवर भरे हुये तिन पर हस, सागम शोभा दे रहे, ऊँचे-ऊँचे रत्नों की डालियाँ झूम रही, उनमें पिक, चातक, फपोत, कीर, वैठ कोलाहल कर रहे ४ और ठाँव-ठाँव सृष्टे सुमुम्भे जोडे पड़े गोपी गाल झूलो पर झूल-झूल ऊँचे सुरों में मलारें गाने रे । उनक निकट जाय २ श्रीकृष्ण बलराम भी बाललीला कर २ अधिक सुग्न दिखाते थ । इस आनन्द स वरां ऋतु बीती, तत्र श्रीकृष्ण गालगाला में कहने लग—कि भैया अत्र तो मुखदाई शरद ऋतु आई ।

चौ०—सत्रको सुख भारी अत्र जान्यो । म्वाद सुगन्ध रूप पहिचान्यो ॥
निशि नत्र उज्ज्वल आकाश । मानहुँ निर्गुण प्रह प्रकाश ॥
चारि मास जो पिरमे गेह । भये शरद तिन तजं मनेह ॥
अपने अपने काजन वाये । भूप चढे तकि दश पराये ॥

वरुणलोकगमन, वैकुण्ठ चरित्र

शुकदेव जी बोले कि—महाराज ! एक दिन नन्द जी न समय कर एकादशी व्रत किया, दिन तो स्नान, ध्यान, भजन, जप, पूजा में काटा और रात्रि जागृरणी में बिनाई । जत्र छ घरी रात रही

और द्वादशी भई तब उठ प रुग्ण कर भोर हुआ जान घोंनी
 अंगोत्रा म्कारी रो यमुना नाने चले तिनरे पीत्रे कई एक ग्वान
 भी हो लिय । तीर जाय प्रणाम पर कपड़े उतर नन्द जी जो नीर
 में बैठे तो वरुणा प सेवक जो जल की चौकी देन थे कि कोई रात
 को नहाने न पावे, उन्हान जा वरुणा से क्या कि--महाराज ! कोई
 उस समय यमुना में नहाय रहा है हम क्या आशा होती है ? वरुणा
 बोला--उसे अभी पकड़ लाओ । आशा पान ही सेवक फिर वहाँ
 आये जहाँ नन्द जी स्नान कर जल में रखे तप करत थे । धाने ही
 अचानक नाग फाँस डाल नन्द जी को वरुणा के पास ले गय तब
 नन्द जी के साथ जो ग्वाल गये थे तिन्हान आय कृष्ण से कहा
 कि--महाराज ! नन्दराय जी को वरुणा के गण यमुना तीर से
 पकड़ वरुणालोक को ले गये । इतनी बात के सुनते ही श्री
 गोविन्द क्रोध कर धाय और पा भर में वरुणा के पास जा पहुँच,
 इन्हें दखते ही वह उठ खड़ा हुआ और हाथ जोड़ तिनरी पर
 बोला --

श्री०-सुफल जन्म है आज हमारे । पायो यदुपनि दर्शन तुम्हारे ॥
 कीजै दोष दूर मर मर । नन्द पिता इस कारण धरे ॥
 तुमको सत्रके पिता बगाने । तुम्हरे पिता नहीं हम जान ॥
 रात को नहाते दर अज्ञान गण पकड़ लाय, भला श्मी मिस
 में दर्शन आपका पाया । अत्र दया कीजै, मरा दोष चित्त में न
 लीजै । ऐसे अति दीवता कर बहुत सी भेट लाय नन्द और कृष्ण ।
 के आगे धर जन वरुणा हाथ जोड़ शिर नाय सन्मुख खड़ा हुआ
 तब कृष्ण भेंट ले पिता को साथ लेकर वहाँ से चल घुन्दाघन आये,

इन्को देखते ही सत्र ब्रजवासी आय मिले । तिस समय बडे गोपो ने नन्दराय से पूछा कि, तुम्हे वरुण के सेवक कहाँ ले गये थे ? नन्द जी बोले—सुनो, वे वहाँ से पकड मुझे वरुण के पास ले गये तोही यहाँ से कृष्ण पहुँचे इन्हें देखते ही वह सिंहासन से उतर पाँवों पर गिर गिन्ती कर कर कहने लगा— नाथ ! मेरा अपराय क्षमा कीजै मुझसे अनजाने यह दोष हुआ, सो चित्त में न लीजै । इतनी बात नन्द जी के मुख से सुनते ही गोप आपस में कहने लगे—कि भाई ! हमने तो यह तभी जाना था, जब कृष्णचन्द्र ने गोनर्द्धन धारण कर ब्रज की रक्षा करी कि नन्द महर के घर मे आदि पुरुष ने आ अवतार लिया है ।

ऐसे आपस में बतराय फिर सत्र गोपो ने हाथ जोड कृष्ण से कहा कि—महाराज ! आपने हमे बहुत दिन भरमाया पर अत्र सत्र तुम्हारा भेद पाया, तुम्हीं जगत् के करता दुःखहर्ता हौं, त्रिलोकी-नाथ दया कर वह हमे वैकुण्ठ दिखाइये । इतना वचन सुन कृष्ण जी ने जण भर में वैकुण्ठ रच उर ब्रज ही को दिग्वाया । देखते ही ब्रजवासियों को ज्ञान हुआ, तो कर जोड सिर झुकाय के बोले— हे नाथ ! तुम्हारी महिमा अपरम्पार है । हम नहीं कह सकते, पर आपकी कृपा से आज हमने यह जाना कि तुम नारायण हो भूमि का भार उतारने को ससार में जन्म ले आये हो शुक्रदेव जी बोले कि—महाराज ! जब ब्रजवासियों ने इतनी बात कही तभी कृष्णचन्द्र ने सत्रको मोहित कर जो वैकुण्ठ की रचना रची थी सो उठाय ली, श्री माया फैलादी, तो सत्र गोपों ने अपना सा माया के बश हो कृष्ण को अपना पुत्र ही

कस नारद-सनाद

शुक्रदेव जी बोले कि—महाराज ! एक दिन कृष्णाचन्द्र बलराम साँझ समय धेनु चराय वन से घर को आते थे, इस बीच एक असुर अति बड़ा बेल बन आय गया में मिला ।

चौ०—आकाश लो देह तिह धरी । पीठ बड़ी पाथर सी करी ॥
 नडे सींग तीनण दोड ररे । रस नयन अति ही रिन भरे ॥
 पँड्र उठाय टकारत फिरै । रठि रठि भूतल गोनर करै ॥
 फडक कन्ध हिलारै कान । भजे दव सत्र छोडि रिमान ॥
 सुर सों गोद नदी करारे । परत उथल पीठ सो डारे ॥
 सत्र को प्रास भयो तिहि काल । कपि लोक पाल दिग पाल ॥
 पृथ्वी हलै शेष धर हरेँ । त्रिय आ धनु गर्भ भू परेँ ॥
 उसे देखत ही एत गायें जिधर तिधर फैल गई, और प्रज-
 चासी दौड वहाँ आय, जहाँ सत्र से पीड़े कृष्ण बलराम चले
 आत थे । प्रणाम कर कर—महाराज ! आग एक बड़ा बेल सडा
 है । उससे हमें बचाओ, इतनी रात के सुनत ही अन्नव्यामी
 श्रीकृष्णाचन्द्र बोले कि, तुम कुछ मत डरो उमस, वह नीच
 हमस अपनी मीच चादता है, वृषभ का रूप उनकर आया है ।
 इतना कह आग जाय उम देख बोले वनमाली, कि आग हमार
 पास, तू आर किसी को क्यों डराना है, भरे निकट किस लिए
 नहीं आना है । जो बैरी सिद्ध का कहानता है मो मृग पर नहीं
 धावता । देख में हूँ कालरूप गोविन्द मैंन तुम स बहुतों को मार
 है ।

यो कह फिर ताल ठोक ललकारे, आ मुग्धमें मप्राम कर । यह वचन सुनते ही असुर ऐसा क्रोध कर धाया कि मानों इन्द्र का वज्र धाया । ज्यो ज्यो हरि उमे हटाने थे, त्यो त्यो वह मैंमन सँभल उठा आना था । एक बार ज्योंही उन्होंने उमे द पट्टा, त्योही सिजला कर उठा और दोनो मीगों में उमन हरि की दवाया, तब तो श्रीकृष्ण जी ने भी पुरनी में निकल मट पाँव पर पाँव द उसके सींग पकड यो मरोडा कि नैने फाँड़े मीगे धीर फाँ निचोडे । निम्न वह पठाड राय गिरा और उसका जी पिच्छर गया । तिस समय सब देवता लगे अपने अपने विमानों में बैठ आनन्द से फूल बर्षाने और गोपी गोप कृष्ण यश गा । इस बीच राधिका जी ने आ हरि से कहा कि—महाराज ! प्रथम यह जो तुमने मारा इसका पाप हुआ । इसमें अब मुम भीर्य नष्ट हो आयो तब किसी को हाथ लगायो । इतनी बात क सुना मी प्रभु बोले कि, सब तीर्थों को मैं व्रज ही में बुलाय तंत्रा हूँ । यो यह गोवर्द्धन के निकट जाय दो अदि कुण्ड मुत्राय, तर्नी मय भीर्य देह धर आये, और अपना अपना नाम क प्रथम गग शाल चले गये । तब कृष्णचन्द्र उनमें स्नान कर कष्ट आ अनप गोदान दे बहुत से ब्राह्मण जिमाय शुद्ध हय । और ज्यो दिन में कृष्णकुण्ड राधाकुण्ड करक वे प्रसिद्ध हय ।

यह प्रसंग सुनाय शुकदेव मुनि श्रोते कि—महाराज ! एक दिन नारद मुनि जो कस के पास आय । और उनका क्रोध को जब उन्होंने बलराम और श्याम के होने के आने और कृष्ण के मले का भेद समझा

तब कस क्रोध करके बोला—नारद जी, तुम मत्प्य कहने हो—

दो०—प्रथम दियो सुत आनि कै, मन परतीन घटाय ।

ज्यों ठग कहूँ दिखाइ कै, सर्वस ले भजि जाय ॥

इतना कह वसुदेव को बुलाय पण्ड बाँधा और गार्ड पर हाथ रख थकुला कर बोला—

चो०—मिला रहा कपटी तू मुझे । मला साधु जाना मैं तुम्हें ॥

दिया नन्द क कृप्या पठाय । दबी हूँ दिखाई आय ॥

मन में कहूँ कहौँ मुख थोर । आज अवशि माँहँ बहि ठोर ॥

मित्र सगा सेवक हितकारी । करै कपट सो पापी भारी ॥

दो०—मुख मीठा मन रिप भरा, रहै कपट क हेत ।

आप काज परद्रोहिया, उससे बना जो प्रत ॥

ऐसे बक करके फिर कस नारद जी से कहने लगा कि—महाराज ! कुछ इनके मन का भेद हमने न पाया, लडका हुआ आर कन्या को ला दिखाया । जिसे कहा अधूरा गया, सोई जा गोकुल में बलदेव भया । इतना कह क्रोध कर होठ चनाय सङ्ग उठाय जो चाहा कि वसुदेव को माँहँ, तो नारद मुनि न हाथ पकड कर कहा—राजा ! वसुदेव को तू आज रख, और जिसमें कृप्या बलदेव आने सो काज कर । ऐसे समुझाय बुझाय जन नारद मुनि चले गये तब क्रम ने वसुदेव देवकी को तो एक कोठरी में मँद दिया और आप भयातुर हो कशी नाम राजस को बुलाके बोला—

चो०—महाबली तू साथी मेरा । बडा भरोसा मुझको तरा ।

एक बार तू प्रज में जा । राम कृप्या हति मुझे दिखा ॥

इतना उचन मुनते ही, फेशी नो आशा पा विदा हो दण्डवन्
 र वृन्दावन को गया, और कम ने शल, तोशल, चाणूर, अरिष्ट,
 व्योमासुर आदि जितने मत्री थे, मत्रको बुलाय भेजा। वह आय
 निहं समझा कर कहने लगा कि मरा घैरी पास आय बसा है।
 तुमने अपने जी मे मोच पिचार करके मरे मन का शूल जो
 खटका है निकालो। मत्री जोने—पृथ्वीनाथ! आप महाबली हो
 किससे डरते हो, राम कृष्ण का मारना क्या बड़ी बात है। कुछ
 चिन्ता मत करो। जिस छल रत्न से ये यहाँ आये सोई हम मना
 बतावे।

पहिले तो यहाँ भली भाँति से एक ऐसी सुन्दर रङ्गभूमि
 पनपावे, कि जिसकी शोभा मुनत ही देवता को नगर २ गाँव २
 व लोग उठ धाँपें। पीछे महाश्व का यज्ञ कराओ, होम व लिये
 वकरे भैसे मगनाओ, यह समाचार सुन सब ब्रजवामी भेंट लायेंगे,
 जिनके साथ राम कृष्ण भी आयेंगे। तभी कोई मल्ल पड़ाड़ेगा,
 कि कोई और ही बली पौर पै मार डालेगा, इतनी बात के
 सुनते ही,

सो०—कहै कस सन लाय, भलो मती मन्त्री दियो।

लीने मल्ल बुलाय, आदर कर बीरा दियो॥

फिर सभा कर अपने बडे २ राजसो से कहने लगा कि, जब
 हमारे भानजे राम कृष्ण यहाँ आये तब तुम मे से कोई उन्हें
 मार डालियो, जो मेरे जी का खटका जाय। उन्हें यों समझाय पुनि
 महाराज को बुलाय के बोला कि तेरे बश में मतवाला हाथी है

खड़ा रहना। जब व दोनों आवे द्वार मे पाँव

तुम हाथी से चिरवा डालियो। किसी भाँति भागने न पाव, जो दोनों को मारेगा सो मुँह मागा धन पावैगा।

ऐसे सर को सुनाय समझाय धुभाय, कार्निक यदि चौदस को शिव का यज्ञ ठहराय, कम ने साँभ समय अक्रूर को बुलाय अति भाव भक्ति कर घर क भीतर ले जाय एक सिंहासन पर अपने पास बैठाय, हाथ पकड़ अति प्यार से कहा कि तुम यदुकुच में सर से बड़े ब्रानी धर्मात्मा धीर हो, इस लिए तुम्हें सर जान मानत हं, ऐसा कोइ नहीं जा तुम्हें डेर सुनी न होय। इसमें जैसे इन्द्र का काज घामन ने जा किया, जो छल कर बलि का सारा राज्य ले लिया। और राजा बलि को पाताल पठाया, तैने तुम मारा काम करो, तो एक बेर घुन्दावन जाओ और देवकी के दोनों लडकों को जैसे बने तैसे छल बल कर यहाँ ले आओ। कहा है जो बड़े हँ, सो आप दुःख सह पराया काज करते हँ, तिस में तुम्हें तो सर घात की लाज हमारी है, अधिक न्या कह, जैसे बने तैसे उठे ले आओ, तो यहाँ मरुज ही में मारे जायेंगे। कै तो चाणूर पडाडेगा, कै कुशलयापीड गज पकड़ चीर डानेगा। नहीं तो मैं ही उठ माँगा अपना काज अरने हाथ सरोँगा, और उन दोनों को मार पीछे उगूसेन को हनूँगा, न्याकि वह बड़ा कपटी है, मरा मरना चाहता है। फिर देवकी के पिता देवक को आग से जनाय पाती में डुयोऊँगा, माय ही उसक वपुदेव को मार हरिभक्तों को जट से खोऊँगा, तब निकलकर राज्य पर जरासन्ध जो मेरा प्रचण्ड मित्र है उम्मे पास से नरसण्ड काँपते हँ और नरकासुर, बाणासुर आदि बड़े २ महानली राक्षस जिनक

सेवक हूँ, निमसे जा मिन्नूंगा। जो तुम राम कृष्ण को तो आओ।

इनकी बातें कह कर फिर अमर को ममकाने लगा कि, तुम वृन्दावन में जाय नन्द के यहाँ कहियो कि शिर का यज्ञ है, धूप धरा है और अनेक-२ प्रकार के कुतूहल बढ़ाँ होयेंगे। यह मुन नन्द उपनन्द गोपां समेत चरते भैंस ले भेंट देने आयेंगे, तिरके माय करने का कृष्ण चलने भी आयेंगे। यह तो मैं तुम्हें उरके लाने का उपाय बताय दिया। आगे तुम मशान हो जो और उभिन बनि आरै सो करियो, अधिक तुम से क्या फटें, कहा —

सां०-होय विचित्र वसीठ, जादि बुद्धिबल आपगे।

पर कारज पर दीठ, करदि भरोसो तादि को ॥

इनकी बात के सुनते ही पहले तो अमर ने अपने जी में विचारा कि जो मैं अब इसे कुछ भली बात कहूँगा, तो यह न मानेगा। इससे उत्तम यही है कि इस समय इसके मनभाती सुहानी बात रहूँ, ऐसे और भी ठौर कहा है, कि वही कहिये जो जिसे सुहाय। यों सोच विचार अमर हाथ जोड शिर झुकाय घोला— महाराज ! तुमने भला मता किया, यह वचन हमने भी शिर चढ़ाय मान लिया, होनहार पर कुछ घश नहीं चलता। मनुष्य अनेक मनोरथ कर धावता हूँ, पर कर्म का लिया ही फल पानता है। सोचते कुछ हैं और होता कुछ है, और किमी के मन का चता होता नहीं। आगा बांध — यह बात विचारी है, न जानिये कैसी होय, मैंने तुम्हारी कल भोर को जाऊँगा

और रामकृष्ण को तो आऊँगा। ऐसे षड कस से विदा हो अक्रूर अपने घर आया।

अक्रूर-वृन्दावन गमन

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि—महाराज ! कार्तिक वदि त्रयोदशी को भोर ष तड़क ही अक्रूर कस के पान आय विदा हो रथ पर चढ़ अपने मन में या विचारता वृन्दावन को चला कि ऐसा मैं क्या जप, तप, यज्ञ, दान, नीर्थ, व्रत किया है, कि जिससे पुण्य से यह फल पाऊँगा, अपने ज्ञान तो इस जन्म भर कभी हरि का नाम नहीं लिया, सदा कस की सगति में रहा, भजन का भेद कहाँ पाऊँ। हाँ, अगने जन्म कोई बड़ा पुण्य किया हो उस धर्म के प्रताप का यह फल हो तो हो। जो कस ने मुझे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्द कन्द के लेने को भेजा है, तो अब जाय उनका दर्शन पाय, जन्म सुफल कहूँगा।

महाराज ! ऐसे विचार फिर अक्रूर अपने मन में कहने लगा कि, कहीं मुझे व कस का दूत न समझें ? फिर आप ही सोचा कि जिनका नाम अन्तर्यामी है, वे तो मन की प्रीति मानते हैं, और सब मित्र शत्रु को पहचानते हैं। ऐसा कभी न समझेंगे, वरन् मुझे देखन ही गने लगाय दया कर अपना कोमल कमल सा कर मेरे शरीर पर धरेंगे। और मैं इस चन्द्रवदन की शोभा इकटक निरस अपने नयन चकोरों को सुख दूँगा, कि जिसका ध्यान ब्रह्मा, रद्र, इन्द्र आदि सब देवता सदा करते हैं।

। कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी न राजा परीक्षित से कहा

कि, महाराज ! इन भाँति सोच विचार करते रथ हाँक इधर से तो अक्रूर जी गये । और उर वन से गौ चराय ग्वालघालों समेत कृष्ण बलदेव भी आये तो इनसे उनसे वृन्दापन के बाहर ही भेंट भई, हरि छत्रि दूर से देखने ही, अक्रूर रथ से उतर अति अक्रुलाय दौड़ उनके पाँवों पर जा गिरा । और ऐसा भगन हुआ कि मुँह से बोल न आया, महा आनन्द कर नयनों मे जल बर्पावने लगा । तब श्रीकृष्ण जी उसे उठाय अनि प्यार से मिल हाथ पकड धर निवाय ले गये । वहाँ नन्दराय अक्रूर जी को देखते ही प्रसन्न हो उठकर मिले, और बहुत सा आदर मान किया, पाँव धुलगाय आसन दिया ।

चौ०-लिये तेज मर्दनियाँ आये । उग्रति सुगन्ध चुपरि अन्हवाये ॥
चौका पटा यशोदा दियो । पट्टरस रुचि सो भोजन कियो ॥

जब अचवाय के पान खाने बैठे, तब नन्द जी उनकी कुशल चेम पूँछ बोले कि, तुम तो यदुवशियो में बडे साधु हो सदा अपनी बडाई से रहे हो । कहो अब कस दुष्ट के पाम कैसे रहते हो, और वहाँ के लोगों की क्या गति है सो सत्र भेद कहो, अक्रूर जी बोले—

चौ०-जतें कस मधुपुरी भयो । तब तें सत्र ही को दुर दयो ॥
पूँछो कहा नगर कुशलात । परजा दुग्गी होत हैं गास ॥
जोलों है मधुरा में कस । तौलों कहाँ बचै यदुवस ॥

“तु मेरे छेरीन को, ज्यो खटीक रिपु होइ ॥
ज्यो परजा को कस है, दु ख पावै सब फोइ ॥

और रामकृष्ण को ले आऊँगा। ऐसे कष्ट कम से विदा हो प्रकूर अपने घर आया।

अकूर-वृन्दावन गमन

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि—महाराज ! कार्तिक वदि त्रयोदशी को भोर ५ तड़क ही अकूर कस के पाम आय विदा हो रथ पर चढ़ अपने मन में जो विचारना वृन्दावन को चला कि ऐसा मैं क्या जप, तप, यज्ञ, दान, तीर्थ, व्रत किया है, कि जिसका पुण्य से यह फल पाऊँगा, अपना जाल तो इस जन्म भर कभी हरि का नाम नहीं लिया, सदा कस की सगति में रहा, भजन का भेद कहीं पाऊँ। हाँ, अगले जन्म कोई बड़ा पुण्य किया हो उस धर्म के प्रताप का यह फल हो तो हो। जो कस ने मुझे श्रीकृष्णचन्द्र ध्यानन्द कन्द के लेने को भेजा है, तो अब जाय उनका दर्शन पाय जन्म सुफल करूँगा।

महाराज ! ऐसे विचार फिर अकूर अपने मन में कहने लगा कि, कहीं मुझे वे कस का दूत न समझें ? फिर आप ही सोचा कि जिनका नाम अन्तर्द्वामी है, वे तो मन की प्रीति मानते हैं, और सब मित्र शत्रु को पहचानते हैं। ऐसा कभी न समझेंगे, वरन् मुझे देखते ही गले लगाय दया कर अपना कोमल कमल सा कर मेरे शरीर पर धरेंगे। और मैं उस चन्द्रवदन की शोभा इकट्ठक निरख अपने नयन चकोरो को सुख दूँगा, कि जिसका ध्यान ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र आदि मय देवता सदा करत है।

कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से

कि, महाराज ! इस भाँति सोच विचार करते रथ हाँक इधर से तो अक्रूर जी गये। और उधर उन से गौ चराय ग्वालघातों समन कृष्ण बलदेव भी आये तो इनसे उनसे वृन्दावन पे बाहर ही भट भई, हरि छत्रि दूर से देखने ही, अक्रूर रथ से उतर अति अक्रुलाय दौड उनके पाँवों पर जा गिरा। और ऐसा मगन हुआ कि मुँह मे बोल न आया, महा आनन्द कर नयनों से जल बर्षाने लगा। तत्र श्रीकृष्ण जी उसे उठाय अति प्यार से मिल हाथ पकड घर लिजाय ले गये। वहाँ नन्दराय अक्रूर जी को देखते ही प्रसन्न हो उठकर मिले, और बहुत सा आदर मान किया, पाँव धुलाय आसन दिया।

चौ०-लिये तेज मर्दनियाँ आये। उग्रटि सुगन्ध चुपरि अन्हवाये ॥
चोका पटा यशोदा दियो। पट्रूम रुचि सौं भोजन कियो ॥

जत्र अचवाय के पान राने बैठे, तत्र नन्द जी उनकी पुशाल चैम पूँछ बोले कि, तुम तो यदुवशियो में बडे साधु हो सदा अपनी बडाई से रहे हो। कहो अत्र कस दुष्ट के पास कैसे रहते हो, और वहाँ के लोगों की क्या गति है सो मन भेद कहो, अक्रूर जी बोले —

चौ०-जपतें कस मधुपुरी भयो। तत्र तें सत्र ही को दुख दयो ॥
पूँछो कहा नगर कुशलात। परजा दुखी होत हें गात ॥
जोलों है मथुरा में कस। तौलों वहाँ बचै यदुबस ॥

दो०-पशु मेढे छेरीन को, ज्यो खटीक रिपु होइ ॥
त्यो परजा को कस है, दु ख पावै सब कोइ ॥

इतना कह फिर बोले कि, तुम तो कस का व्यौरा जानते हो हम अगिक क्या कहेंगे।

अक्रूर-दर्शन

श्रीशुकदेव जी बोने कि पृथ्वीनाथ ! जय नन्द जी वानें कर चुके तब अक्रूर को कृष्ण बलराम सैन से बुलाय अलग ले गये। चौ०—आदर कर पृथ्वी कुशलात । कहौ कका मथुरा की बात ॥

हैं वसुदेव देवकी नीक । राजा घैर परयो तिनहीं के ॥

अति पापी है मामा कस । जिन सोयो सिगरो यदुबस ॥

कोई यदुकुल का महारोग जन्म ले आया है, तिसी ने सब यदुवशियो को सताया है। और सत्य पृष्ठो तो वसुदेव देवकी हमारे लिये इतना दुख पाते हैं, जो हमें न खिपाते तो वे इतना दुख न पाते, यों कह कृष्ण फिर बोरो—

चौ०—तुमसों कहा चलत उन कह्यो । तिनको सदा ऋणी हों रह्यो ॥

करत होयेंगे सुरत हमारी । सकट में पावत दुख भारी ॥

यह सुन अक्रूर जी बोले कि—कृपानाथ ! तुम सब जानते हो क्या कहेंगा कस की अनीति, उसकी किसी से नहीं है प्रीति, वसुदेव और उससेन को नित्य मारने का विचार किया करता है।

पर ये आज तक अपने प्रारब्ध से बच रहे हैं, और जय से नारद मुनि ढाय आपके होने का सब समाचार बुझाय क कह गए हैं, तब ही वसुदेव जी को बेड़ी हथकड़ी दे महा दुख में रक्खा है, और करा धाभे, वहाँ महादेव का यज्ञ है और धनुष धरा है, सब कोई पैसाते भी आंगेंगे, सो पुण्डे घुटाने को मुझे भेजा है। यह कह कर

कि तुम जाय राम कृष्ण समेत नन्दराय को यज्ञ की भेंट समेत लिवाय लाओ, सो मैं तुम्हें लेने को आया हूँ। इतनी घान अमरु जी से मुन राम कृष्ण ने आय नन्द से कहा —

चौ०—कंम बुलायो है मुन तान । यदि अमरु कया यहि बात ॥
गोरस मंडे छेरी तेऊ । धरुप यज्ञ है ताको दऊ ॥
सन मिलि चलो माघ आपने राजा । बोले रहन न बने ॥

जब ऐसे समझाय घुम्नाय कर श्रीकृष्णचन्द्र जी ने नन्द जी से कहा—तब नन्दराय जी ने उसी समय ढढोरिये को बुलवाय सारे नगर में यो कह कर छोड़ी फिरवा दी, कि फल सपरे ही मन मिल कर मथुरा को जायेंगे। राजा ने बुताया है, इस बात को सुनने से भोर होते ही भेंट ले ले सकल मजवासी थान पहुँचे और नन्द जी भी दूध, दही, माखन मंडे, बकरे, भैंसे ले सफट जुनवाय उनथ साथ हो लिये और कृष्ण बलदेव भी अपन ग्वालवाल मगात्रो को साथ ले रथ पर चढ़े।

चौ०—आगे भये नन्द उपान्द । सन पाछे हताधर गोविन्द ॥
श्रीशुकदेव जी बोले कि—पृथ्वीनाथ ! एकाणकी श्रीकृष्णचन्द्र का चलना सुन सन गज की गोपिर्वा प्रति घबराय व्याकुल हो घर छोड हडनडाय टठ धाई और बुढ़ती झुकती गिरती पड़ती वहाँ आई, जहाँ श्रीकृष्णचन्द्र का रथ था, आते ही रथ के चारों ओर खड़ी हो हाथ जोड निनती कर कहने लगी—हम किस लिये छोडते हो गजनाथ ! सर्वन्व निया तुम्हारे हाथ । साधु की तो प्रीति कभी घटती नहीं, कर की सी रेखा सदा रहती है, और मूढ की प्रीति नहीं टहरती है, जैसे वानू की भीति, ऐसा तुम्हारा क्या अपराध

किया है ? जा हमें पीठ दिए जात हो । यों श्रीकृष्णचन्द्र को सुनाय फिर गोपियाँ अमूर की ओर दस बोलीं —

चो०—यह अमूर क्रूर है भारी । जानी कछु न पीर हमारी ॥

जा विन क्षण सत्रहोन अनाथ । तेहि ले चणे आपने साथ ॥

कपटी क्रूर कठिन मन भयो । वृथा अमूर नाम किन नियो ॥

ह अक्रूर कुटिल मति हीन । क्यो दाहृत अथला आरीन ॥

ऐसी कडी ० रातें सुनाय सोच मकोच छोड हरि का रथ पफड

आपस में कहने लगीं—मथुरा की नारियाँ अति चंचल चतुर रूप गुण भरी हैं । उनके गुण ओर रम के वश हो उहाँ ही रहेंगे विहारी, तब काहे को करेंगे मुरति हमारी, उन्हीं न बडे भाग हें जो हरि प सग रहेगी, हमारे जप तप करन मे क्या ऐसी चूक पडी थी जिमस श्रीकृष्णचन्द्र निडुडते हैं । यों आपस में कह फिर हरि से कहने लगीं कि तुम्हारा तो नाम है गोपीनाथ, किस लिए नहीं ले चलते हमें अपने साथ ।

चो०—तुम विन क्षण क्षण कैम कटे । पलक ओट भय छानी फटें ॥

डित लगाय क्यो करत निडोह । निठुर निर्दयी धरन न मोह ॥

ऐसे तहा जपें सुन्दरी । सोचै दु ल समुद्र मे तरी ॥

चाहि रही इरुदरु हरि ओर । ठगी मृगी सी चद्र चओर ॥

परहि नयन से आसू दृट । रहीं निथुर लट मुग पर छूटा ॥

श्रीशुभदेव मुनि बोले—राजा ! उस समय गोपियों की तो यह दशा थी, जो मैंने कही । और यशोदा रानी ममता कर पुत्र को कण्ठ लगाय रो रो अति प्यार से कहती थी कि देरा जे दिन में तुम वहाँ से फिर आओ तै दिन के लिये कनेऊ ले आओ ।

तहा जाय किसी से प्रीति मन कीजो, वेग आय अपनी जननी को दर्शन दीजो। इतनी बात सुन श्रीकृष्ण रथ से उतर सन को ममकाय चुकाय मा स विदा होय दण्डवन कर आशीश ले फिर रथ पर चढ चले तिस काल इधर से तो गोपियो समेत यशोदा जी अति अकुलाय रो २ कृष्ण २ कर पुकारती थीं। और उपर से श्रीकृष्ण रथ पर सड़े पुकार २ कहते जाते थ कि तुम घर जाओ, किसी बात की चिन्ता मत करो, हम पाँच चार दिन मे ही, फिर कर आते हें।

ऐमे कहते २ और दखन २ जन रथ दूर निकल गया, और धूलि आकाश तक छाई तिसमे रथ की ध्वजा भो न दिखाई दी। तन निराश हो एक बेर तो सन की मन नीर पिन मीन की भाँति तडफडाय मूर्छा राय गिरीं। पीछे कितनी एक बेर में चेत कर उठीं, और अवधि की आशा मन मे धर धैर्य कर, इधर यशोदा जी तो सन गोपियो को ले वृन्दावन को गईं। और उधर श्रीकृष्णचन्द्र सन समेत चले २ यमुना तीर आ पहुँचे। तहाँ ग्यालबालों ने जल पिया और हरिन भी एक बड की छाँह मे रथ सडा किया। जन अक्रूर जी ने नहाने का विचार कर रथ से उतरे, तन कृष्ण चन्द्र ने नन्दराय से कहा कि आप सन ग्यालबालो को ले आगे चलिये, चचा अक्रूर स्नान कर लें तो पीछे से हम भी आ मिलते हें।

यह सुन सन को ले नन्द जी आगे बढे और अक्रूर जी कपडे खोल हाथ पाँव धोय आचमन कर तीर पर जाय नीर में पैठ डुबकी ले पृजा तर्पण, जप, ध्यान कर, फिर डुबकी मार थाँस खोल जल में देखें तो वहाँ रथ समेत श्रीकृष्ण दृष्टि आये।

चान सके। इस भाँति स्तुति कर अक्रूर ने प्रभु क चरण का ध्यान धर कहा—कृपानाथ ! मुझे अपनी शरण मे रक्यो।

मथुरापुरी-प्रवेश

श्रीशुकदेव जी बोले कि महाराज ! जब श्रीकृष्णचन्द्र ने नट माया की भाँति जल मे अनेक रूप प्रियाय हर लिये, तब अक्रूर जी ने नीर से निकल तीर पर आ हरि को प्रणाम किया। तिस काल नन्दलाल ने अक्रूर से पूँछा कि काका शीत समय जल के बीच इतनी बेर क्यों लगी ? हमे यह अति चिन्ता थी तुम्हारी, कि चचा ने किस लिए वाट चलन की सुधि मिसारी, क्या कुछ अचरज तो जाकर नहीं देखा, यह समझाय क रहो जो हमारे मन की दुनिया जाय।

चौ०—मुनि अक्रूर कह जोरे हाथ । तुम सत्र जानत हो राजनाथ ॥
भली दरश दीनो जल माही । कृष्ण चरित को अचरज नाहीं ॥
मोहिं भरोमो भयो तिहारो । बेग नाथ मथुरा पग धारो ॥
अब यहाँ मिलम्व न करिये शीघ्र चल कार्य मीजै । इतनी बात के सुनत ही हरि भट रथ पर बैठ अक्रूर को साथ ले चल सडे हुए, और नन्द आदि जो सत्र गोप ग्वाल आग गये थ उन्हीन जाय मथुरा क बाहर डेरे किए । और कृष्ण बलदेव की वाट देग र अति चिन्ता कर आपस में कहने लगे, इतनी अपर न्हाते क्यों लगी और किस लिए अब तक नहीं आण हरि ? किस इस बीच चले ? आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र जाय मिले ! उस समय हाथ जोड शिर झुकाय विनती कर अक्रूर जी बोले कि राजराज अब

य मरा घर पवित्र कीवै और अपने भक्ता को दर्श दिखाय
सुख दीजै, इतनी बात सुनते ही हरि न अक्रूर से कहा —

चो०—पहिले सोध कम को ठेहु । तब आपनो दिखरायो गेहु ॥
सत्र की पितनी कहो जु जाय । सुनि अक्रूर चले शिर नाय ॥
चले २ कितनी एक पर मं रथ से उतर कर वहाँ पहुँचे जहाँ
कम सभा किए बैठा था । इनको दखने ही सिंहासन से उठ नीचे
आय अति हित कर मिला, और बड़े आदर मा से हाथ पकड
ले जाय सिंहासन पर अपने पास बैठाय इनकी कुशल चैम पूछ
बोला, जहाँ गए थे वहाँ की बात रहो ।

चो०—सुन अक्रूर कह्यो समझाय । ब्रजकी महिमा कही न जाय ॥
कहा नन्द की करों बडाइ । बात तुम्हारी शीश चढाई ॥
राम कृष्ण दोऊ हैं आप । भेंट सत्रै ब्रजवासो लाग ॥
डराफिये नदी क तीर । उतरे गाडा भारी भीर ॥
यह सुन कस प्रमत्त हो बोला--अक्रूर जो तुमने आज हमारा
बडा काज किया जो रामकृष्ण को ले आये, अब घर जाय विश्राम
करो ।

इतनी कथा कह शुरुद्व जी न राजा परीक्षित से कहा कि
महाराज ! कस की आज्ञा पाय अक्रूर जी तो अपने घर गए, और
वह मोच विचार करने लगा । और जहाँ नन्द उपनन्द बैठ थे, तहाँ
उनसे हलधर और गोविन्द ने पूछा, जो हम आप की आज्ञा पायें
तो नगर दस आर्यें । यह सुन पहिले तो नन्दराय जी ने कुछ खाने
को मिठाई निशाल दी, उन दोनो भाइयों ने मिल कर खाय
ली । पीछे बोने अच्छा जाओ, दस आओ, पर विलम्ब मत कीजो ।

इतना घचन नन्द महर के मुख से निकलते ही आनन्द कर दोनों भाई अपने ग्वालबाल सत्याश्रो को साथ ले नगर देखने चले। आगे बढ़ देखे तो नगर के बाहर चारों ओर बन उपवन फूल फूल रहे हैं, तिन पर पक्षी घँटे अनेक अनेक भाँति की मन भावन बोलियाँ बोलत हैं। और बड़े २ सरोवर निर्मल जल से भरे हैं, उनमें कमल गिरी हुए जिन पर मोरों के झुण्ड के झुण्ड गूँज रहे, और तीर में हंस सारस आदि पक्षी कलोलें कर रहे, शीतल सुगन्ध सनी मन्त पवन बह रही, और बड़ी बड़ी वाडियों की वाडा पर पनवाडियाँ लगी हुई, बीच बीच वर्ण वर्ण की फूलों की क्यारियाँ कोसों तक फूली हुई, ठोर २ इन्दारों वाडियों पर छट हरोहें चल रहे, माली मीठे २ स्वरो से गाय २ जल सींच रहे हैं।

यह शोभा बन उपवन की निरल हर्ष प्रभु सन समेत मथुरा-पुरी में पेटे। वह पुरी कैसी है कि जिनके चारों ओर तावे की फोट और पक्की चुथ्यान चौड़ी राई, स्फटिक के चार फाटक तिनमें अष्टशानी फिजाड कञ्चनलचित लगे हुए और नगर में वर्ण २ के रात, पीते, हरे, धोले, पचखने, सनखने, मन्दिरे ऊँचे ऐसे कि घटा से पातें कर रहे हैं। जिनके सोने के कलश कलशियों की ज्योति विजली सी चमक रही, ध्वजा पताका फड़राय रही, जाली झरोखों मोखों से वृष की सुगन्ध आय रही। द्वार २ पर केले के खम्भ और सुवर्ण के कलश सपल्लव धरे हुए, तोरण वन्दनार बँधी हुई, घर २ राजन वाज रहे और एक ओर भाँति २ के मणिसय कञ्चन के मन्दिर राजा के न्यारे ही जगमगाव रहे।

तिनकी शोभा कुछ बरणी नहीं जाती ऐसी जो सुन्दर सुहावनी
मथुरापुरी, तिमै श्रीकृष्ण बलदेव ग्वालवालों को साथ लिये
देखने चले ।

न्ये०—परी धूम मथुरा नगर, आगत नन्द कुमार ।

सुन धाये पुर लोग सब, गृह को काज विसार ॥

चौ०—श्वार जो मथुरा की सन्दरी । सुनत फान अनि आतुर सरा ॥
कहैं परम्पर बचन उचारी । आगत हे बलभद्र मुरारी ॥
निन्हें अमूर गये हैं तेन । चलहु सग्री अन दणिय नन ॥
कोऊ खात न्हान त भजे । गुहृत शीश कोऊ उठि तर्ज ॥
अपनी सुधि बुधि को विसरार्थ । उलटे भूषण वदन बनारै ॥
जैमे ही तैस उठि धाई । कृष्ण वरश दरसन को आई ॥

सो०—लाज फान डर डार, कोऊ गिरकिन कोऊ अटन ।

कोऊ खडी दुआर, कोऊ दोरी गलियन फिरत ॥

ऐसे जहाँ तहाँ सडि नारी । प्रभुहि प्रतारे बाँह पमारी ॥

नील बरन गोरे पलराम । पीताम्बर ओढे धनश्याम ॥

ये भानजं कस क दोऊ । इनत असुर बच्यो नहिँ साऊ ॥

सुनत हती पुरपारथ जिनको । दयो रूप नयन भगि तिनको ॥

पूरज जन्म सुकृत कहु कीनो । मो विधि पद दर्शन फल दीनो ॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव मुनि बोलि दि--महाराज । इसी

रीति से सब पुरवासी क्या स्त्री क्या पुष्प अनेक ० प्रफार की
घात कह ० दर्शन कर मग्न होते थे । आर जिस हाट बाट चौटटे
में हो सब ममत कृष्ण पलराम निकलते थे, नहीं अपने कोठा पर
खडे इन पर चोरा चन्दन छिडक ० आनन्द से फूल वर्षात ॥

और ये नगर की शोभा देख २ ग्वालवालो से यो कहते जाते थे, भैया ! कोई भूलियो मत और जो कोई भूलै तो पिछले डेरो पर जाइयो । इसमे कितनी एक दूर जाय के देखते क्या हैं कि कस क धोत्री ओये कपडो की लादियाँ लादे पोटे मोट लिये, मठ पिये, रग राते, कस यश गाते, नगर के बाहर से चले आते हैं । उन्हे देख कृष्णचन्द्र ने धलदेव जी से कहा कि—भैया ! इनके सन चीर छीन लो और आप लीजिये पहिर ग्वालवालों को पहिराय वचे सो लुटाय दीजिये । भाई को यो सुनाय सन समेत धोत्रियो के पास जाय हरि बोले —

चौ०—हमको उज्ज्वल कपडा देह । राजहिं मिलि आवैं फिर लेहु ॥

जो पहिरायति नृप सो पैह । तामें ते कुछ तुमको दहें ॥

इतनी बात के सुनते ही उनमे से जो बडा धोत्री था सो हँस कर म्हने लगा —

सो०—रायें सरी बनाय, हूँ आवौ नृप द्वार लौ ।

तव लीजो पट आय, जो चाहो सो दीजियो ॥

चौपाई

वन २ फिरत शरावत गैया । जात अहीर कामरी उडैया ॥

नट को भेष बनाये आये । नृप अम्बर पहिरन मन भाये ॥

जुरि के चले नृपति के पास । पहिरावन लेवे की आस ॥

यह बात धोवी की सुनकर हरि ने फिर मुमकराय कहा—हम तो सूधी चाल से माँगते हैं, तुम उलटी क्यों समझते हो । कपडे देन से क्या तुम्हारा न निगडेगा वरन् यश लाभ होगा । यह वचन सुनकर धोवी ने कहा—

चौपाई—राजा क बागे पहिरने

देखो, अरे आग से जा, नहीं अभी मार डालना हूँ । इतनी बात के सुनते ही क्रोध कर श्रीकृष्णचन्द्र ने तिरछा कर एक हाथ मारा कि उसका मिर भुट्टा सा उड़ गया । तब जितने उमर मारी और टहलुए थे, सबके सब पोटें मोटें लादियाँ छोड़ अपना जीव ले भागे और कम क पास जा पुकारे । वहाँ श्रीकृष्ण जी ने सब कपडे ले लिये, और आप पड़िन भाइ को पहिनाय ग्वालजालो को घाँट बचे सो लुटाय दिये जिस समय ग्वालबाल अति प्रमत्त हो २ लगे उलट पुलटे वस्त्र पहिरने ।

दो०—कटि कस पग पहिरे भगा, सूथन भले माँह ।

वसन भेद जाने नहीं, हँसत कृष्ण मन माँह ॥

जो वहाँ से आगे बढ़े सो एक सूची ने आय लण्डवत् कर रण्डे होय, कर जोड़ क कहा—महाराज । मैं कहने को तो कस का सेनक कहलाता हूँ, पर मन से मदा थाप ही का गुण गाता हूँ, दया कर कहो तो धागे पहराऊँ जिससे तुम्हारा नास कहाऊँ ।

इतनी बात उसक मुख से निकलते ही अन्तर्यामी श्रीकृष्ण ने उस अपना भक्त जान निकट घुलाय के कहा, तू भने समय आया, अच्छा पहराय द । तब तो उसने मटपट ही रोल डोड कनर छाँट सी कर ठीक ठाक बनाय चुन २ रामकृष्ण समन सब को बाग पहिराय दिये । उस काल नन्दलाल उसे भक्ति द साथ ले आगे चले ।

चौ०—तहाँ सुगमा माली आयो, आदर कर अपने घर लायो ॥

मन ही को माला पहिराई, माली के घर भई बधाई ॥

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि—महाराज ! भोर ही जन नन्द उपनन्द सत्र बडे ० गोप रगभूमि की सभा में गये, तब श्रीशुकदेव-चन्द्र जी ने बलदेव जी से कहा कि भाई ! सत्र गोप आय गये, अब बिलम्ब न करिये, शीघ्र ग्वालजाल सत्ताओं को साथ ले रगभूमि देखने चलिये ।

इतनी बात के सुनते ही बलराम जी उठ खडे हुए, और सत्र ग्वालजाल सत्ताओं से कहा कि भाइयो ! चलो, रगभूमि की रचना देख आवें । यह वचन सुनते ही तुरन्त सत्र साथ हो लिये, निदान श्रीशुकदेव बलराम नटवर चेष किये, ग्वालजाल मखाओं को साथ लिये, चले २ रगभूमि की पौर पर आय खडे हुए । जहाँ दश सहस्र हाथियों का बल वाला गज कुवलायापीड खडा भूमता था ।

चौ०—देख मतग द्वार मतवारो । गजपालहि बलराम पुकारो ॥
सुनो महावत बात हमारी । लेहु द्वार तें गज तुम टारी ॥
जान देहु हम को नृप पास । नातर है है गज को नास ॥
कहे देन नहि दोष हमारो । मत जाने हरि को तू बारो ॥

ये त्रिभुवनपति हैं, दुष्टो को मार भूमि का भार उतारने को आये हैं, यह सुन महावत क्रोध कर बोला—में जानता हूँ, गो चराय के त्रिभुवनपति भये हैं, इसी से यहाँ आय बडे शूर की भक्ति बडे खडे हैं । धनुष का तोडना न समझियो, मेरा हाथी दस सहस्र हाथियों का बल रखता है जन तक इससे न लड़ोगे—

तब तऊ भीतर न जाने पाओगे, तुम न तो बहुत बली मारे हैं,
पर आज इससे हाथ से बचोगे तब मैं जानूँगा कि तुम बडे बली
हो ।

दो०—तबहिं कोपि हलधर कह्यो, सुन रे मूढ कुजात ।

गज समेत पटका अबहिं, मुख मैंभार कहु वात ॥

मो०—नेकु न लागि हैं बार, हाथी मरि जैह अबहिं ।

तोसों कहत पुकार, अबहुँ मान मोरो कह्यो ॥

इतनी बात वे मनते ही झुँझना कर गजपाल न गज पेला
ज्यो वह बन्देन जी पर टटा, न्या इन्हाने हाथ घुमाया एक
थपेडा ऐसा मारा कि वह सूँड सिकोड चिधार मार पीछे हटा ।
यह चरित्र देग्न कम के बडे २ योद्धा जो सडे देग्नते ये सो अपने
जी में यो हार मान मन ही मन पहन लगे कि इन महा बलवानो
से कौन जीत सरेगा, और महाबन भी हाथी को पीछे हटा जान
अति भय मान जी मे विचार करन लगा कि जो यह वाताक न
मारे जायँ तो कस भी मुझे जीता न छोडगा । यो मोच समझ
उसने फिर अकुशमार हाथी को तत्ता किया और इन दोना
भाड्यो पर हन लिया, उसने आन ही सूँड म हरि को पटक पछाड
सुनसाय ज्यो दाँता स दबाया, त्यो प्रभु सूक्ष्म शरीर बनाय दाँतो
के बीच उच रहे ।

दो०—हरपि उठे तिहि फाल सन, सुर मुनि पुर नर नारि ।

दुहुँ दशन त्रिच है नडे, उच निरि प्रभु द तारि ॥

सो०—उठे गजहिं के साथ, बहुरि रज्याल हो हाँक दे ।

तुरतहिं भये सताय, देखि चरित भव श्याम थे ॥

चोपाई

हाक मुनत अति कोप गडायो । भटक सँड यदुरो गज धायो ॥
 रहे उर तर दनकि मुरारी । गयो जान गज रहो निहारी ॥
 पाछे प्रकट फेर हरि टेरो । बलदाऊ आगे तें घरो ॥
 लागे गजहि खिलाउन दोऊ । भोचक रहे दर सत्र फोड ॥

महाराज ! उसे कभी बलराम सँड पकड गंचत थ, कभी
 श्याम पूँछ पकड, और जत्र गड इन्हे पकडने को आता था, तत्र
 य अलग हो जान थ, कितनी एक घर ताई उससे एस खलत
 रह जैम बड्डों के साथ खालपन में खलते थ । निदान हरि ने
 पूँछ पकड फिराय उसे द पटका और मार घूँसों के मार डाला,
 नाँत उखाड लिये, तत्र उमक मुँह से लोह नदी की भाँति बह
 निकला । हाथी क मरत ही महाजन ललकार कर आया प्रभु ने
 उमे भी हाथी क पाँव तले भट मार गिराया, और हँसत २ दोनों
 भाई नटवर भेष किये एक २ दाँत हाथी का हाथ में लिये रङ्गभूमि
 क बीच जा म्यडे हुये । उस काल नन्दलाल को जिन २ न जिस २
 भाय से दया, उस २ को उसी २ भाय से नृष्टि आये । मल्लो ने मल्ल
 माना, राजाओं ने राजा जाना, दवनाओं ने अपना प्रभु बूझा,
 ग्वालखालों ने सखा, नन्द उपनन्द न बालक समझा, और पुर की
 युगतियों ने रूपनिधान, और कमादिक राक्षसों ने काल समान
 दया । महाराज ! इनको निहारते ही कस अति भयमान हो पुकारा,
 अरे मल्लो ! इन्हे पछाड मारो, मेरे आगे से टालो ।

इतनी बात ज्यो कम के मुँह से निकली त्यो सत्र मल्ल गुरु

सुन चले मग लिय, वर्णा ० व भय क्रिय, ताल ठाक ० भिडन की श्रीकृष्ण प्रलाराम के चारों ओर घिर आय। जैसे व आये तैस य भी सँभल रख हुये, तब उनमें से इनकी ओर दस्य चतुराई कर चाणूर बोला—सुनो आज हमारे राजा कुछ उदास हैं, इस्मे जी बहलाने को तुम्हारा युद्ध दगा चाहत हैं, क्योंकि तुमने वन म रह सब विद्या सीखी है आर भिमी बात का मन में सोच न कीनै, हमारे साथ मल्ल युद्ध कर अपने राजा को सुग्य दीनै। श्रीकृष्ण बोले—राजा जी न घडी दया कर हम बुलाया है। आज हमस क्या सरेगा इनका काज, तुम अति बली गुणवान, हम बालक अज्ञान, तुममें हाथ कैसे मिलारें। कहा है व्याह बेर और प्रीति समान से कीजै, पर राजा जी स कुछ हमारा बश नहीं चलना, इममें तुम्हारा क्या मानते हैं। हमें बचा लीजो, बल पर पटङ न दीजो। अब हमें तुम्ह उचित है जिममें धर्म रहै सो कीजिये, आर मिल कर अपने राजा को सुग्य दीजिये।

बौ०—तब चाणूर कहै भय राय। तुम्हारी गति जानी नहिं जाय ॥
 तुम बालक मानुष नहिं दोऊ। कीन्हें कपट बली हौं कोऊ ॥
 ग्वलत धनुष रखड हूँ परे। मारे तुरत छुप्रलया तरे ॥
 तुम से लरे हानि नहिं होय। या बातें जान सब कोय ॥

कसासुर-बध

श्रीशुकद्वय मुनि बोले कि, पृथ्वीनाथ ! कितनी एक बातें कर सब ल ठोक चाणूर तो श्रीकृष्ण व सोही हुआ। और मुष्टिक बलराम जी से भिन्ना, उनका इनसे मल्ल युद्ध होने लगा।

श्री०—शिर मो शिर भुजमो भुजा, नष्टि नष्टि मो जोरि।

चरण चरण गहि भपटि कै, लपटन कपट भकोरि ॥

उस काल सब लोग इन्हे उन्ह दर दर आपस में कहने लग
दि, भाइयो ! इस सभा में अति अनीति होनी है । दसो कहीं ये
बालक रूपनिदान, कहाँ है मजल मल्ल चक्ररामान, जो परजें तो
कस रिसाय, न परजें तो धर्म जाय, इससे अब यहाँ रहना उचित
नहीं क्याकि हमारा कुछ बश नहीं चलता ।

महाराज ! इधर तो ये सब लोग या रहते ये, और उधर
श्रीकृष्ण बलराम मत्तो म मल्ल युद्ध करत थ । निदान इन दोनो
भाइयों न उन दोनो मल्ला को पड़ाड मारा, उनके मरत ही सब
मल्ल आय दूट प्रभु न पल भर में तिन्ह भी मार गिराया । तिस
समय हरिभक्त नो प्रमन्न हो राजन राजाय राजाय जय जयकार
करन लगे, और दबता आकाश में अपन विमानों में बैठ कृष्ण-
यश गाय गाय फूल वर्षाने लग, और कम अति दु रा पाय
व्याकुल हो रिसाय अपन लोगा से रहने लगा—अरे राजे जाने !
राजे राजात हो, तुम्हे क्या कृष्ण की जीत भानी है ?

यो रह बोला ये दोनो बालक बड़े चञ्चल हें, इन्हे पकड साँप
सगा से बाहर ले जाओ, और दबकी समेत उपसेन वसुदेव
कपटी को पकड लाओ । पहिले उन्हें मार पीछे इन दोनो को
भी मार डालो । इतना बचन कम क मुख से निकलते ही भक्तो
के हितकारी मुरारी सब असुरो को क्षण भर में मार, उद्वल के
वहाँ जा बढे, जहाँ अति उँचे मञ्चपर मिल्लम पड़ने टोप दिये,
परी साँडा लिये उडे अभिमान से कम बैठा था । वह इनको काल

समान निकट देखते ही भय गाय ष्ठ खड़ा हुआ, और लगा
धर २ काँपने ।

मन से तो चाहा कि भागै पर मारे लाज क भाग न सका,
फरी खाँडा सँभाल लगा चोट करने । उस काल नन्दलाल अपनी
घात लगाये उसकी चोट प्रचाने थ । मुर नर मुनि और गरु
यह महायुद्ध दर २ भयमान हो थापुकारते थ, हे नाथ ! हे नाथ !
इस दुष्ट को बग मारो । कितनी एक बेर तक मञ्च पर युद्ध रहा,
निगन प्रभु न सन को दुखित जान उसक कश पण्ड मञ्च स
नोचे पटका, और उपर से आप भी धूद कि उमका जीव घट स
निकल मटका । तब सन सभा क लोग पुकार श्रीकृष्णचन्द्र न
रुत को मारा, यह शब्द सुन मुर नर मुनि सन को अनि आनन्द
हुआ ।

दो०—हरि स्तुति पुनि हरष सन, वरष सुमन मर उन्द ।

मुदित उजायत दुन्दभी, कहि जय जय नन्दन ॥

सो०—मथुरा पुर नर नारि, अति प्रफुल्ल सन को ढियो ।

मनहुँ कुमुद बन चारि, निरुमिन हरि मुख शशि निरति ॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुक्रदत्त जी न राजा परीक्षित से कहा
कि धमावतार ! कस क मरते ही जो अनि उलवान आठ भाई
उसक थ मो लडने को चढ आये । प्रभु न उन्हे भी मार
गिराया । जब हरि ने दखा कि अब यहाँ राक्षस कोई नहीं रहा ।
तब कम की लोथ को घसीट यमुना तीर पर ले आये और नेनो
भाइयों न बैठ विधाम किया । तिस दिन से उस ठौर का नाम
विधाम घाट हुआ ।

आग कम का भरना सुन कंस की रानियाँ दबगानियों ममेन
 धनि व्याकुल हो गेली पीरनी धर्ती थीं जहाँ यमुना प नीर
 दोना वीर मृतक लिय बैठ ध, और लगी अपने पति का सुग
 निरस - सुख सुमिर गुण गाय - व्याकुल हो - पदाद् गाय -
 गिरत, कि हम बीच दग्गानियाँ कन्ह कन्ह कर कर निरत
 जा रोने -

चो. — नामी सुनहु शोक नहि कीने । माता जी को पानी दीने ॥
 सग न कोउ जीवन रहे । झूठो सो जो अपाओ छै ॥
 मात पिता मुन कन्धु न सोई । जन्म सरग फिर्ती सिद्धोई ॥
 जौलौ जा मरन्ध रहे । नौही लौ नामा सुग लै ॥

महाराज ! जब श्रीकृष्ण न रानियों को सहृदयता, न प्य दृष्टा
 वहाँ से बठ धीरे घर यमुना नार पर आ पति का पानी लिया कं...
 आप प्रभु न अपने हाथ स कम को आग - मरही गति की ।

शशामुर-वध

श्रीशुकदेव मुनि जेले कि हे राजा ! रानियाँ तो दग्गानिया
 समेत वहाँ स नहाय धोय रोय राजमन्त्रि को गई और श्रीकृष्ण
 बलराम भुवदेव नेत्री प पाम आय, उनके हाथ वीर की
 हथकटियाँ जेडियाँ काट, एवदन्कर हाथ जोड मन्मुख गये
 हुए । तिस समय प्रभु का रूप दग्ग वसुधव दवकी को ज्ञान हुआ ।
 नो उल्लौन अपने जी मे निहक्य कर जाना कि ये दोनों मिथ्या
 हैं, अमर्गों का भार भूमि का भार न्कारने को ममार मे अत्र
 ले आये हैं ।

जब बमुत्तेव त्पत्नी ने यो जाना, तब अतयामी हरि ने अपनी माया फैलाय दी। उसने उनकी यह मति हरि ली। फिर 'तो उन्होंने इन्हें पुत्र कर समझा कि इनने म श्रीकृष्णचंद्र यति पीनता कर बोले —

चो०—तुम यह दिनस लहो दुख भारी। करत रहे अति सुरति हमारी॥

इसमें हमारा कुछ अपराध नहीं क्योंकि जब से आप हमें गोकुल में नद क यहाँ सर आय तब से परवश ध, हमारा वश न था, पर भन म सत्य यह आता था कि जिसर गर्भ में दश महीन रह जन्म लिया, उम कभी कुछ मुग्य न लिया, न हमहीं न माता पिता का मुग्य दगा वृत्ता जन्म पराय यहाँ रीया। उन्होंने हमारे लिय अति विपत्ति रही हम स उद्ध उनकी सेवा न भई, सक्षर में सामर्थी नई हैं जो माँ आप की सेवा करत हैं, हम उनके श्रुणी रहे टहल न कर सक।

प्रथ्वीनाथ ! जब श्रीकृष्ण जी न आपन मन का मद यो क सुनाया, तब अति आनंद कर उन दोनों न इन दोनों को छितकर कण्ठ लगाया, और सुख मान पिछला दुख सब गँगाया। गेस माता पिता को सुख द दोनों माई वहाँ म चले ० असैन क पाम आय, आर हाथ जोड़ कर जाने —

चो०—नाना जी अब कीजे राज। शुभ नक्षत्र नीको दिन आज ॥

इतना हरि क मुग्य से निकलत ही राजा उअसन ठ फर आ श्रीकृष्णचन्द्र क पाँजे पर गिर कर कहन लग कि प्रपानाथ ! मरी पिनती मुन लीजिय। जैसे आपन सन असुरो रमत कस महादुष्ट को मार भक्तो को मुग्य दिया, नैम ही सिंतामन पै रैट अर

मधुपुरी का राज्य कर प्रजा पालन कीजिये । प्रभु बोले--
महाराज ! यदुप्रशियो को राज्य का अधिकार नहीं, इस बात को
सब कोई जानता है । जब राजा ययाति बूढ़े हुए तब अपने पुत्र
यदु को उ हाने बुलाकर कहा--अपनी तरुण अवस्था मुझे द,
और मेरा बुढ़ापा तु ले । यह सुन उमने जी में विचार कि
जो मैं पिता को युवा अवस्था दूँगा तो यह तरुण हो भोग करगा,
इससे मुझे पाप होगा, इसमें नहीं करना ही भला है । यो मोच
समझ के उसने कहा कि पिता यह तो मुझसे न हो सकता । इतनी
जात ब मुनत ही राजा ययानि ने क्रोध कर शाप दिया कि जा तर
वश मैं राजा कोई न होगा ।

इस ग्रीष पुरु नाम उसका छोटा बेटा सन्मुख आ हाथ जोड़
बोला--पिता ! अपनी वृद्ध अवस्था मुझे दो और मरी तरुणाई तुम
लो । यह वह किसी काम की नहीं, जो तुम्हारे काम आये तो इससे
उत्तम क्या है । जब पुरु ने या कहा तब राजा ययाति प्रसन्न हो
अपनी वृद्ध अवस्था द उसकी युवा अवस्था ले बोले--कि तेरे कुल
में राजगद्दी रहेगी, इसमें नाना जी हम यदुप्रशी हैं, हमें राज्य
करना उचित नहीं --

सो०--करो बैठ तुम राज, दूर करो सन्देह सब ।

हम करिँ सब काज, जो आयसु दहो हमे ॥

चोपाई

जो न मानि है आन तिहारी । ताहि दड करिहँ हम भारी ॥
और कत्रू चित्त शोच न कीजै । नीति सहित परजहि सुख दीजै ॥
यादव जिते कस की ग्राम । नगर छॉडि के गये प्रवास ॥

निनको अत्र करि रोज मंगाओ । सुग डे मथुरा माँक प्रमाओ ॥
 त्रि धेनु सुर पूजन कीजै । इनकी रत्ना मे चित दीजै ॥

इतनी कथा कह श्रीशुकद्व मुनि बोले कि धर्मावनार ।
 महाराजाशिराज भक्तहितकारी श्रीकृष्णचन्द्र ने उपसेन को
 अपना भक्त जान एस समझाय सिंहासन पर बिठाय राजतिलक
 दिया, और छत्र फिराय दोना भाइयो ने अपने हाथा चमर
 किया ।

उस जाल सन नगर क वामी अति आनन्द म मग्न हो धन्य २
 कहने लग, और दवना फूल बर्षानि । महाराज ! यो उपसेन को
 राजपाट पर बिठाय दोना भाई बहुत से वस्त्र आभूषण अपने साथ
 लियाव वडा म चने २ नन्दराय जी के पास आये, आर सन्मुख
 हाथ जोड रखे हो अति दानना कर बोले--हम तुम्हारी क्या बडाई
 कर, जो सहस्र जीभ होयें तो भी तुम्हारे गुण का बरतान हम म न
 हो सक । तुमने हमें अति प्रीति कर अपने पुत्र की भाँति पाला
 सन लाड प्यार किया, आर यशोदा मैया भी बडा स्नेह करती
 और अपना हित हम ही पर रखती सदा निज पुत्र समान जानती,
 कभी मन से भी हमे पराथा कर न मानती ।

एम कह फिर श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि ह पिता ! तुम यह बात
 सुन का कुत्र बुरा मत मानो । हम अपने मन की बात कहते हैं कि
 माता पिता तो तुम्ह ही कहगे, पर अब कुत्र दिन मथुरा में रहेग,
 अपने जाति भाइयो को दख यदुकुन की उत्पत्ति मुनेग, और
 माता पिता से मिल उन्हें सुख देंगे, क्योंकि उन्होंने ने हमारे लिये बडा
 लग्न सहा है, जो हमें तुम्हारे यहाँ न पहुँचा आन तो व दुर

न पाते । इतना कह बन्ध आग्रहण नन्द महार के आगे धर प्रभु ने निर्मोही हो फटा —

चौ --- भैया मां पालागन कहियो । हम पं प्रेम करे तुम रहियो ।

इतनी घात श्रीकृष्ण प मुँड में निकलने ही नन्दराय तो अनि उठान हो लगे लम्बी मोमें लीने और ग्वालजाल विचार कर मन ही मन में यो कहने लगे कि यह क्या अचम्भे की घात कहते हैं इस ने ऐसा समझ में आता है कि अब ये कपट कर जाया चाहत हैं । नहीं तो ऐसे निरुधर वचन न कहते, महाराज ! निरान उनमे से श्रीमा नाम सग्या बोला—भैया ! कन्हैया अब मथुरा में तरा क्या काम है ? जो निठुराई कर पिता को छोड यहाँ रुक है । भला किया काम को मारा, मन काम महारा, अब न के साथ हो लीजिये, वृन्दावन में चल कर राज्य कीजिय । यहाँ क राज्य दग्य मन में मत ललचाओ, वहाँ का मा सुख न पाओगे ।

सुनो, राज्य देव कर मूर्ख भूलत हैं और हाथी दंठे द्य दस फूलते हैं । तुम वृन्दावन छोड नहीं मत रडो, कर्न मा यत्न रहती है सयन धन और यमुना की शोभा मन में लीने रती । भाइ, जो वट सुख छोड हमारा वृन्दावन न न लीने ही नाया तज यहाँ रहोगे तो इसमें तुम्हारी दग्य दंठे रती ? इतने की सग्या करोगे, और रात दिन विन्दा में रहेंगे । इतने तुम के राज्य दिया उसी क आधीन होना इतने क वृन्दावन के लीने जायगा । इस से अब उत्तम यती है कि नन्दराय को वृन्दावन

चोपाइ

ब्रजवन नदी विहार विचारो । गायन को मन त न विसारो ॥
 नहीं छोड़िहैं हम ब्रजनाथ । चलिहैं सत्र विहारे साथ ॥

इतनी कथा रह श्रीशुकदेव मुनि ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज ! ऐसे कितनी एक वार्ते कह दस गीम सत्ता श्रीकृष्ण नल राम जी क साथ रहे, और उन्होन नन्दराय से बुझा कर कहा कि आप सत्र को ले निस्सदह आगे उठिये पीछे म हम भी उन्हें साथ लिये चले आत ह । इतनी बात क सुनते ही,

सो०— व्याकुल सत्र अहीर, मानहुँ पन्नग क डसे ।
 हरि मुख लगत अधीर, ठाढे काढ़े चित्र से ॥

उस समय बलदेव जी नन्दराय को अनिदु रित दर समझान लगे कि, पिता तुम ! इतना दुःख क्यों पान हो थोडे एक दिन में यहाँ का काज कर हम भी आते हैं, आपको आग इसलिये निदा करत हैं कि माता हमारी अमली व्याकुलहोनी होयँगी, तुम्हारे गये से उन्हें कुछ धीर्य होगा । नद जी बोने कि बेटा, एकवार तुम मेरे साथ चलो फिर मिल कर चले आइयो ।

दो०—एसे कहि अति विकल हो, रह नन्द गहि पाय ।

भई क्षीया शुनि मद मति, नयनन जलन नहाय ॥

महाराज ! जब माया-रहित श्रीकृष्णचद्र जी ने ग्वालवाला समत नंदराय को महा व्याकुल दखा तो मन म विचारा कि ये मुझ से त्रिदुहे ग तो जीत न दचेंग । त्या ही उन्होंने अपनी उस माया को छोडा, जिसने सारे ससार को भुला रखा है । उसने आन ही नद जी को सत्र समेत अज्ञान विया । फिर बोले कि—

पिता । तुम इतना क्यों पढ़ताने हो, पहिले यही विचारो कि मथुरा और वृन्दावन में अन्तर क्या है । तुम से हम कहीं दूर तो नहीं जाते जो इतना दुरा पाते हो, वृन्दावन क लोग दुःखी होंग इसलिये तुम्हे आगे भेजते हैं ।

जब ऐसे प्रभु ने नन्द महर को मममाया, तत्र व धीर्य वर हाथ जोड बोले—प्रभु जो तुम्हारे ही जी में यो आया तो मेरा क्या कश है ? जाता हूँ तुम्हारा कदा टाल नहीं सक्त । इतना वचन नन्द जी के मुख से सुनते ही हरि ने ग्वालमालो समेत नन्दराय को तो वृन्दावन विदा किया, और आप कई सखाओ समेत दोनो भाई मथुरा में रहे, उम काल नन्द सजित गोपगवाल चले ।

चौ०—चले सकल मन सोचत भारी । हारे सर्वस मनहु जुवारी ॥
काहू सुधि काहू सुधि नहीं । लटपट चरण परत मग माही ॥
जात वृन्दावन देसत मधुवन । निरह पिथा घाडी व्याकुल तन ॥
इस रीति से ज्यों त्यो कर वृन्दावन पहुँचे । इनका आना सुनत ही यशोदा रानी अति अकुलाय कर दौडी आई, और रामकृष्ण का न देखा महा व्याकुल हो नन्द जी से कहने लगी —

चौ०—अहो कन्त सुत कहाँ गँवाये । पट आभूषण लीनो आये ।
कचन फेरु काँच घर राख्यो । अमृत छाँडि मूढ विपचार्यो ॥
पारस पाये अथ ज्यो हारे । फिर गुण सुने कपारहिँ फारे ॥
ऐसे तुमने भी पुत्र गँवाये, और वसन आभूषण उतर पलटे ले आये अब उन निन धन क्या करोगे ? हे मूर्ख कन्त ! जिनसे भये छाती फटे, कहो उन निन दिन कैसे

जब उन्होंने तुम से प्रियुडने को कहा—तब तुम्हारा हिया कैसा रहा ।

इतनी बात सुन नन्द जी को घडा दु रा पाया और नीचा शिर कर यह बचन सुनाया कि सत्य है, ये वस्त्र अलंकार श्रीकृष्ण ने दिये, पर मुझे यह सुधि नहीं कि किसने लिय, और मैं कृष्ण की बात कहूँगा, सुनकर तू भी दु रा पायेगी ।

चौपाड

कम मार मोपै फिर आय । प्रीति हरण कहि बचन सुनाये ॥
 वसुदेव के पुत्र व भये । कर मनुहार हँकारी गये ॥
 हों तन महरि अचम्भे रह्यो । पोषण भरण हमारा कह्यो ॥
 अब न महरि हरि सो सुन कहियो । ईश्वर जानि भजन करि रहियो ॥
 उसे तो हमने पहिले ही नारायण जाना था, पर माया वश पुत्र कर माना । महाराज ! जब नन्दराय जी ने सब बातें श्रीकृष्ण की कही यशोदा ने सनी, तिस समय माया वश हो यशोदा रानी कभी तो प्रभु को अपना पुत्र जान मन ही मन पछताय व्याकुल हो रोती थीं । और कभी ज्ञान कर इश्वर जान उनका ध्यान घर गुण गाय गाय मन का ग्वद खोती थी । और इसी रीति से सब घृन्दाबनवासी क्या स्त्री क्या पुण्य हरि के प्रेम रगराते अनेक अनेक प्रकार की बात करते थे, सो मेरी सामर्थ्य नहीं जो मैं वर्णन करूँ ।

उधो-वृन्दावन-गमन

श्रीकृष्णदेव जी बोले कि—पृथ्वीनाथ ! श्रीकृष्णचन्द्र ने वृन्दावन की सुरति करी सो मैं सत्र लीला कहता हूँ, तुम चित्त दे सुनो, कि एक दिन हरि ने बलराम जी से कहा कि, भाई ! सत्र वृन्दावन-वासी हमारी सुरत कर अति दुःख पाते होंगे । क्योंकि जो हमने उनसे अवधि की थी सो धीत गई । इससे अब उचिन है कि किसी को वहाँ भेज दीजें, जो जाकर उनका समाधान कर आवे ।

यों भाई से मता कर हरि ने उद्धव को बुलाय के कहा कि, अहो उद्धव ! एक तो तुम हमारे बड़े सखा हो, दूजे अति चतुर ज्ञानवान् और धीर, इसलिये हम तुम्हें वृन्दावन भेजा चाहते हैं कि तुम जाकर नन्द यशोदा और गोपियों को ज्ञान दे उनका समाधान कर आओ, और माला रोहिणी को ले आओ । उद्धव जी ने कहा जो आज्ञा ।

फिर श्रीकृष्णचन्द्र जी बोले कि, तुम प्रथम नन्द महर और यशोदा जी को ज्ञान उपजाय उनके मन का मोह मिटाय ऐसे समझाय कर कहियो, जो वे मुझे निरुद्विज जान दुःख तजे पुत्रभाव छोड़ ईश्वर मान भजें ।

महाराज ! ऐसे उद्धव को कह दोनों भाइयों ने मिल एक पाती लिखी, जिममें नन्द यशोदा समेत गोप ग्वातावालों को तो यथा योग्य दण्डवत् प्रणाम आशीर्वाद, और सब व्रज युवतियों को योग का उपदेश लिख उद्धव के हाथ दी । और कहा कि यह पाती

मुन्हीं पट सुनादयो, जैसे धो तैमे उा सत्र सत्र को समझाय शीघ्र
आदयो ।

इतना सदेशा कह प्रभु ने निज यन्त्र आभूषण मुकुट पहिराय
अपने ही रथ पर बैठाय उद्धव जी को गृन्दाना विना किया । ये
रथ हाँप मिनती एक घेर में मथुरा से चलते = गृन्दायन प निकट
जा पहुँचे, तो वहाँ गया क्या है कि सथा = कुन्जों के पटो पर
भाँति भाँति व पत्नी मन भाया घोनियाँ योन रंग हैं । और गिपर
निर धौली पीली भूरी कानी गाये घटा सी किरती हैं, और
टौर = गोपी गोप ग्यालनाल श्री कृष्ण यश गाय रह हैं ।

यह जोभा निरग्न हर्षते और प्रभु का विशारस्थल ज्ञान प्रणाम
करथ उद्धव जी जो गाँव क र्वेड़े गये तो किमी दूर स हरि का
रथ पहिचान पास आय डाका नाम पुँद्रा । नन्द मद्द ने जा कहा
कि महाराज ! श्रीकृष्ण का भेष किय उन्हीं का रथ लिये कोई
उद्धव नाम मथुरा म आया है ।

इतनी बात सुनत ही नन्दराय जैसे गोप मण्डली क शीघ्र
आयाई पर बैठे व तैमे ही उठ धाय और तुरन्त उद्धव जी पे निकट
आये, राम कृष्ण जी का मगी जान अनि हितकर मिनै और
कुशल क्षेम पुँद्रा बडे आनरमा से घर लियाय ले गये पहले पाँच
धुलनाय प्राप्तन बैठन को लिया, पीछे पटूरस भोजन धनरा उद्धव
जी की पहुनाइ की, जब व रचि से भोजन कर चुप तत्र एक सुयरी
उज्ज्वल फेनमी सज मिद्रवा दी तिस पर पान म्याय जाय उन्होंने
पौड कर अति सुख पाया और मार्ग का थम गँगाया । कितनी
जो उद्धव जी मो पे उठे त्यो नन्द मद्द उनक पास जा

बैठे और पढ़ने लगे कि कहो उद्भव जी ! श्रमेण क पुत्र हमारे परम मित्र वसुदेव जी कुटुम्ब मर्तिन आनन्द मे हैं, और हम से कैसे प्रीति रखते हैं । यो कह फिर योगे —

चौ०—बुजाल हमारे सुन की कहो । जिन के मग मदा तुम गहो ॥
 करहैं व मुधि करत हमारी । न तिन दुख पावन हम भारी ॥
 सयही सो आवन कह गये । घीनी अथपि बहून दिा भये ॥
 निन उट यशोदा श्री विनोय मायन निकान हरि क तिये रखती है । उमकी और प्रजगोपियो की जो उनरे प्रम रंग मे रंगी हैं, निनकी सुरन कभी काह करते हैं कि नहीं ।

इतनी क्या सुनाय श्री शुकेश्य जी ने राजा परीक्षित से कहा कि पृथ्वीनाथ ! इसी रीति में समाचार पढ़ते और श्रीकृष्णचन्द्रकी पूर्व लीला गात ० नन्दराय जी तो प्रम रम भीज इतना यह प्रशु का ध्यान धर अवाच्य हुए --

चौ०—महावती कसादिक मारे । अथ हम काहे कृष्ण त्रिगारे ॥
 कि इस बीच अनि व्याकुल हो मुधि धुरि देह की विमार मन मारे रोती यशोदा रानी उद्भव जी क निकट आय राम कृष्ण की कुशल पूछ बोली—कहो उद्भव जी ! हरि हम विा यहाँ कैसे इतने निन रहे ? और क्या सदेश भ जा है, सब आय दर्शन देंगे । इतनी बात के मुनते ही पहले तो उद्भव जी ने नन्द यशोदा जी को श्रीकृष्ण बलराम की पाती घाँच सुनाय पीछे समझा कर फरने लगे कि जिनके घर में भगवान् ने जन्म लिया और बाललीला कर सुख दिया, तिनकी महिमा कौन कह सके । तुम बडे भाग्यवान् हो,

आदि पुरुष अत्रिनाशी शिव विरश्चि के ~~कहाँ~~ जिनके

माता न पिता न भाई न धन्यु तिसे तुम अपना पुत्र जान मानन हो
और सग उमी के ध्यान मे मन लगाये रहत हो वह तम से कब
दूर रह सकता है । कहा है --

चौ०-सदा समीप प्रेम घश हरी । जिनरु हेन देह जिन धारी ॥

जाक घैरी मित्र न कोइ । ऊँच नीच फोऊ किन हाई ॥

कोइ भक्ति भजन मन धरे । माई हरि सो मिल अनुमरे ॥

जैस भृङ्गी कीट को ले जाना है, और अपना रूप घनाय देता
है और जैसे कमल व फूल में भाँग मूँट जाना है, भौरी गोन भर
उसके ऊपर गूँजती रहती है, उसे छोड आर यहाँ नहीं जानी, नैसेही
जो हरि से हिन करता है और उसका ध्यान धरता है, तिमि भी
आप सा बना लैन ह, और सग उसर पाम ही रहत हें ।

यो कह फिर उद्भव बोले कि अत्र तुम हरि को पुत्र कर मत
जानो इश्वर कर मातो व अन्तर्ध्यामी भक्त हितकारी प्रभु आय
दर्शन दे तुम्हारा मनोरथ पूरा करग तुम किसी धान की चिन्ता
न करो ।

महाराज । इसी रीति स अन्तर २ प्रकार की बातें कहन २
सुनते २ जन सन रात व्यतीत भइ और चार घडी पिछली रही,
तब नन्दराय जी से उद्भव जी ने कहा--महाराज । अब दधि मथन
की विरियाँ हुइ, जो आप की आज्ञा होय तो यमुना स्नान कर
आऊँ, नन्द महर बोले--बहुत अच्छा । इतना कह व तो वहाँ बैठे
सोच विचार करने रहे; और उद्भव जी भट रथ में बैठ यमुना तीर
पर गये, पहिले वस्त्र उतार देह शुद्ध करी, पीछे नीर क निकट
गज शिर अटाय हाथ जोड कार्लिदी की अति स्तुति गाय

आचमन कर जल में पैठ, और नहाय घोष सन्ध्या पूजा नर्पण
से निश्चिन्त हो लगे जप करने ।

अक्रूर-हस्तिनापुर गमन

श्रीशुभदेव जी बोले कि, पृथ्वीनाथ । जब ऐसे श्रीकृष्ण जी
ने अक्रूर प मुग से मुना, तब इन्होंने उन्हें पाण्डवों की मुधि
लेन को विदा किया, व रथ पर बैठ चले । कई एक दिन में मथुरा
से हस्तिनापुर पहुँचे और रथ से उतर जहाँ राजा दुर्योधन अपनी
सभा में मित्रामन पर बैठा था, वहाँ जाय जुहार कर गड़े हुए ।
इन्हें दखने ही दुर्योधन सभा समन उठ कर मिला, और अनि
आदर मान से अपने पास बिठाव इनकी कुशल सेम पूँछ
बोला —

चौपाई

नीरु सूरसेन वसुन्व । नीके हँ मोहन बलदेव ॥

उपसेन राजा केहि हँन । नाहिन काहू की मुधि लेत ॥

पुत्रहि मार करत है राज । तिनिहि न काहू सों है काज ॥

जैसे जब दुर्योधन ने कहा—जब अक्रूर सुन चुप हो रहा,
और मन ही मन कहने लगा कि यह पापियों की सभा है, मुझे
यहाँ रहना उचित नहीं क्योंकि जो मैं रहूँगा तो यह ऐसी २
अनेक बातें कहगा सो मुझ से मन सुनी न जायँगी, इस से यहाँ
रहना भला नहीं ।

यों निवार अक्रूर जी वहाँ से उठ विदुर को माथ ले पाण्डु के
घर गये । तहाँ जाय देखें तो कुन्ती पति के मोच से महा व्याकुल

प्रिना वैकुण्ठ धाम म जा क्या करूँ विभ्राम ? इतना वचन सुन और राजा पे मन का अभिप्राय जान श्रीभक्तहितकारी करुणामिन्धु हरि ने पुरी समेत स्वपच को भी राजा रानी कुँवर क साथ तारा ।

चोपाई

वहाँ हरिश्चन्द्र अमर पद पायो । यहाँ युगन युग यश चलि आयो ॥

महाराज ! यह प्रसंग जरासन्ध को सुनाय श्रीकृष्णचन्द्र जी ने कहा कि, महाराज ! और सुनिये कि, रन्तिन्ध ने ऐसा नप किया कि अडतालीस दिन बिन पानी रहा और जय जल पीन घँठा निसी समय कोई प्यासा आया इसने वह नीर आप न पी उस तृपावन्न को पिलाया, उस जलदान से उमन मुक्ति पाई । पुनि राजा घलि ने अनि दान किया तो पाताल का राज्य लिया और अत्र तत्र उसका यश चला जाता है । फिर दरिये कि उदात्तक मुनि छटे महीने अन्न खात थे एक समय ग्याती बिरियाँ उसका यहाँ अतिथि आया, उसने अपना भोजन आप न खाया भूँख को दिलाया और उस चुधा ही में मर । निदान अत्र दान करन स वैकुण्ठ को गये चढ कर विमान । पुनि एक समय देवनाओं को साथ ले राजा इन्द्र न जाय दधीचि से कहा कि, महाराज ! हम वृत्रासुर क हाथ से अब बच नहीं मरुन जो आप अपनी अस्थि हमें दीजें तो उसके हाथ से बचें नहीं तो वचना कठिन है क्योंकि तुम्हारे हाड से आयुध प्रिना किसी भाँति न मारा जायगा । महाराज ! इतनी बात पे सुनते ही दधीचि ने शरीर गाय स चटवाय जाँघ का हाड निकाल दिया । देवनाओं न ले उस अस्थि का वस्त्र बनाया और दधीचि न प्राण गँवाया, प्रिना धाम पाया ।

चौ०—ऐसे दाना भये अपार । तिनको यश गात समार ॥

राजा ! यों पद्म श्रीकृष्णचन्द्र जी ने जरामन्ध से कहा कि, मदारान । जैसे आगे और युगा में धन्मत्सिमा दानी राजा हो गये हैं तैसे अब इस काल में तुम हा । ज्यों आगे उन न याचका की अभिनाया पूरी की त्यों तुम अब हमारी आशा पुजाओ, कहा है—

दो०—याचक फाह न माँगई, दाता फाह न दय ।

गृह सुत सुन्दरि लाभ नहिं, तन धन दे यश लेव ॥

इतना बचन प्रभु के मुख से निकलते ही जरामन्ध बोला कि याचक को दाना की पीर नहीं होती तो भी दानी धीर अपनी प्रकृति नहीं छोड़ता इमग सुन पावै कै दुःख । देखो हरि न पपट रूप कर वामन बा राजा बलि प पास जाय तीरपग पृथ्वी मोगी । उस समय शुक्र ने बलि को चिताया, तो भी राजा ने अपना प्रण न छोडा ।

चौ०—देह ममेत मही तिन दइ । ताकी जा म कीरनि भई ॥

याचक विष्णु कहा यश लीना । सर्वस हो नोऊ हठ कीना ॥

इसस तुम पहिने अपना नाम भद कहा तन जो तुम माँगोगे सो में दूंगा, मैं मिथ्या नहीं भापता । श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, राजा ! हम क्षत्री हैं वामुन्धे मरा नाम है, तुम भती माँति हमें जानते हो आर ये दोनों अर्जुन, भीम हमारे पुकेर भाई हैं, हम युद्ध करने को तुम्हारे पास आये हैं हमसे युद्ध कीजै । हम यही तुमसे माँगने आये हैं और पुत्र नहीं माँगत । मदारान । यह बात श्रीकृष्णचन्द्र जी से सुन जरामन्ध हँस कर बोला कि मैं तुम से क्या लहूँ ? तू मेरे सोही से भाग चुका है और अर्जुन से भी न लहूँगा,

क्योंकि यह विदर्भ देश गया था तहाँ नारी का भेष करके रहा । भीमसेन से कृपे तो इससे लड़ूँ, यह मरे समान का है इसमें लड़ने में मुझे कुछ लाज नहीं ।

चौ०—पहिले तुम सब भोजन करो । पाछे मत्तल अग्नाडे करो ॥
भोजन दे नृप बाहर आयो । भीमसेन तहँ गोलि पठायो ॥
अपनी गदा ताहि निग दइ । गदा दूमरी आपुनि लइ ॥
दो०—जहाँ मभा मण्डप घन्यो, बैठ जाय मुरारि ॥
जरामन्ध अरु भीम तहँ, भये ठाढ इकरारि ॥

श्री०—टोपा शीश काडनी फाड्ये । वो रूप नटरर फ आड्ये ॥
महाराज ! जिस समय दोनों वीर अग्नाडे में राम ठाँक गदा तान ध्वजा पलट भूम कर स मुत्र आये, उस काल ऐसे जनाये कि माना दो मतङ्ग मतवाले उठ धाये । आगे जरामन्ध न भीम स रहा कि पहिले गदा तू चला क्योंकि तू ब्राह्मण का भेष ले मेरी पोर पर आया था इससे मैं पहिले प्रहार तुम्ह पर न करूँगा । यह बात सुन भीमसेन बोले कि, राजा ! हम से तुमसे धर्म युद्ध है इससे यह ज्ञान न चाडिये । जिसका जी चाहे सो पहिले शस्त्र करे, महाराज ! उन दोनों वीर ने परस्पर ये धार्ते कर एक साथ ही गदा चलाई और युद्ध करने लग ।

चौ०—ताकत धार्ते अपनी अपनी । चोट करत वाई अरु दहिनी ॥
अङ्ग बचाय उद्धरि पग धरै । भरपै गदा गदा सो लरै ॥
रसपट चोट गदा पदकारी । लागत शब्द कुलाहल भारी ॥
इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा महाराज ! इसी भाँति वे दोनों बली दिन भर तो धर्म युद्ध

करते और सौंभ को घर आये एक साथ भोजन कर विश्राम करते।
 ऐसे नित्य लडते लडते सत्ताइस दिन भये, तब एक दिन उन
 दोनों के लडने के समय श्रीकृष्णाचन्द्र जी ने मनही मन विचारा
 कि यह तो न मारा जायगा क्योंकि जब यह जन्मा था तब दो
 फाँक हो जन्मा था। उस समय जरा राक्षसी ने आये जरासन्ध
 का मुँह और नाक मुँदी तब दोनों फाँक मिल गई। यह समाचार
 सुन उमरु पिता बृहद्रथ ने ज्योतिषियों को बुलाये के पूँछा कि,
 कहो! इस लडके का नाम क्या होगा? और कैसा होगा?
 ज्योतिषियों ने कहा कि, महाराज! इसका नाम जरासन्ध हुआ
 और यह बड़ा प्रतापी और अजर अमर होगा, जब तक इसकी
 सन्धि न फटगी तब तक यह किसी से न मारा जायगा। इतना
 कह ज्योतिषी विदा हो चले गये। महाराज! यह बात श्रीकृष्णा
 जी ने मन में शोच और अपना बल दे भीमसेन को तिनका चीर
 सैन से जनाया कि इसे इसी रीति से चीर डालो। प्रभु के चिन्ताते
 ही भीमसेन ने जरासन्ध को पकड़ कर दे मारा और एक जाँघ पर
 पाँच दे दूसरा पाँच हाथ से पकड़ यो चीर डाला कि जैसे कोई
 दाँतन चीर डाले। जरासन्ध के मरने ही सुर नर गन्धर्व ढोल दमामे
 भेर बजाय ० फूल बर्पाय ० जय जयकार करने लगे और दुःख
 द्वन्द्व जाय सारे नगर में आनन्द हो गया। उसी त्रिरियाँ जरासन्ध
 की नारी रोती पीटती आ श्रीकृष्णाचन्द्र जी के सन्मुख खड़ी हो
 हाथ जोड़ बोली कि धन्य है धन्य है नाथ! तुम ने जो ऐसा काम
 किया, कि जिसने सर्वस्व दिया तुमने उसका प्राण लिया। जो जन
 त्त और सम देह, उससे तुम करते हो ऐसा ही स्नेह।

चौपाद

कपट रूप कर छल बल कियो । जगन आय तुम यड यश लियो ॥

महाराज ! जरासन्ध की रानी न जय करुणा कर करुणा-निधान क आग हाथ जोड तिननी कर यो कहा तन प्रभु ने दयानु हो पहिले जरासन्ध की किना की । पीछे उसके मुन सहदेव को बुलाय राजतिलक दे सिंहासन पर बिठाय के कहा कि, पुत्र ! नीति सटित राज्य कीजो और ऋषि मुनि गो ब्राह्मण की रक्षा करो ।

सर्वभूपति हस्तिनापुर-गमन

श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज ! राजपाट पर बैठाय ममन्ताय श्रीकृष्णचन्द्र जी न सहदेव से कहा कि राजा ! अज तुम जाय उन राजाओं को ले आया जिन्ह तुम्हारे पिता ने पहाड की कन्दरा मे मँद रखा है । इतना उचन प्रभु क मुख से सुनते ही जरासन्ध का पुत्र सहदेव बहुत अच्युत कह कन्दरा क निकट जाय उसन मुख से शिला उठाय याउ सौ धीम महान राजाओं को निकाल हरि के सन्मुख ले आया । आते ही हथकड़ियाँ बडियाँ पहिने गने मे साँकल लोहे की डालने, नय फश बटाये तन चीन मन मनीन मैने मेप, सब राजा प्रभु ने सन्मुख पाँति ० सडे हो हाथ जोड तिननी कर बोले—हे कृपासिन्धु ! दीनसिन्धु ! आपने भने समय आय हमारी सुधि ली नही तो सब मर चुने ॥ तुम्हारा दर्शन पाया हमारे जी में जी आया पित्रला दुःख सब गँनाया । महाराज ! इस धान के सुनते ही कृपासागर श्रीकृष्णचन्द्र न ज्यो उन पर दृष्टि की त्यों धात की गान में सहदेव उनको ले जाय हथ-

कडी वेडी फटाय चौर कराय निहलाय धुलवाय पटूरस भोजन
 पिलाय वख आभुपण पहराय गख अस्त्र वेंधवाय पुनि हरि के
 सोही लिवाय लाया । उस काल श्रीकृष्ण जी ने उन्हें
 चतुर्भुजी हो शर चक्र गदा पद्म धारण कर दर्शन दिया । प्रभु का
 स्वरूप भूप देखते ही हाथ जोड़ बोले—नाथ ! तुम ससार के कठिन
 बन्धन से जीत को छुड़ाने हो । तुम्हें जरासंध की बन्धि से हमें
 छुड़ाते क्या कठिन था ? जैसे आपने कृपाकर हमें इस कठिन
 बन्धन से छुड़ाया तैसे ही अब हमें गृहरूप कूप से निकाल काम,
 क्रोध, लोभ, मोह से छुड़ाइये जो हम एक एकान्त बैठ आपका
 ध्यान करें और भवसागर तरें । श्रीगुरुदेव जी बोले कि, राजा !
 जन सत्र राजाओं ने ऐमे ज्ञान वैराग भरे वचन कहे तत्र श्रीकृष्ण-
 चन्द्र प्रमन्न हो बोले कि सुनो जिसके मन में मेरी भक्ति है वे
 निस्मन्हेद भुक्ति मुक्ति पावेंगे । बंध मोक्ष मन ही का कारण है,
 जिसका मन स्थिर है तिन्हे घर और बन् समान है । तुम किसी
 बात की चिन्ता मत करो आनन्द से घर में बैठ नीति सहित राज्य
 कर प्रजा को पालो, गो ब्राह्मण की सेवा में रहो, भूठ मन भापो,
 काम लोभ क्रोध अभिमान तजो, भाप भुक्ति से हरि को भजो,
 तुम निस्सदह परमपद पाओगे । ससार में आय जिमने
 अभिमान क्रिया वह बहुत न जिया, देखो अभिमान ने जिसे २ न
 खो दिया ।

चोपाई

सहस्र बाहु अति बली बलान्यो । परशुराम ताको बल भान्यो ॥
 वेणु भूप रावण हो भयो । गर्व आपने सोऊ गयो ॥

भौमासुर वायासुर कस । भये गर्वत ते विध्वस ॥
श्रीमद गर्व रुगे जिन कोय । त्याग गर्व सो निर्भय होय ॥

इतना कह श्रीकृष्णचन्द्र जी ने सब राजाओं से कहा कि
अब तुम अपने अपने घर जाओ कुटुम्ब से मिल अपना राज-
पाट सँभाल हमारे न पहुँचत पहुँचत हस्तिनापुर में राजा
युधिष्ठिर क यहाँ राजसूय यज्ञ में शङ्ख ध्याओ । महाराज । इतना
वचन श्रीकृष्णचन्द्र जी क मुख से निकलत ही सहदेव ने सब
राजाओं क जान का सामान जितना चाहिये तितना धात की
धात में ला उपस्थित किया । वे ले प्रभु से विदा हो अपने-२ देश
को गये और श्रीकृष्णचन्द्र जी भी सहदेव को साथ ले भीम
अर्जुन सहित वहाँ से चले २ आनन्द मङ्गल से हस्तिनापुर आये ।
आगे प्रभु ने राजा युधिष्ठिर क पास जाय जरासन्ध क मारन क
समाचार और सब राजाओं के छुड़ाने क ब्योरे समत कह सुनाये ।
इतनी कथा कह श्रीशुक्रदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि,
महाराज । श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द जी क हस्तिनापुर पहुँचते
पहुँचते क सब राजा भी अपनी-२ सना ले भेंट सहित आन
पहुँच और राजा युधिष्ठिर से भेंट कर भेंट दी । श्रीकृष्णचन्द्र जी की
आज्ञा ले हस्तिनापुर क चारों ओर जा उतरे और यज्ञ की दहल
में आ उपस्थित हुए ।

शिशुपाल-मोक्ष

श्रीशुक्रदेव जी बोले कि, राजा । जैसे यज्ञ राजा युधिष्ठिर ने
किया और शिशुपाल मारा गया, तैसे मैं सब कथा कहता हूँ तुम

चित्त द सुनो । बीस सहस्र आठ सौ राजाओं के जाते ही चारा
 और के और जितने राजा थे क्या सूर्यशशी और क्या चन्द्रशशी
 तितने सब आय हस्तिनापुर में उपस्थित हुए । उस समय श्रीकृष्ण-
 चन्द्र और राजा युधिष्ठिर ने मिल कर सब राजाओं का सब भोगि
 मिश्रचार कर समाधान किया और हर एक को एक एक काम यज्ञ
 का साधा । आगे श्रीकृष्णचन्द्र जी ने राजा युधिष्ठिर से कहा कि,
 महाराज ! भीम अर्जुन नकुल सहदेव सहित हम पाँचा भाई तो
 सब राजाओं को साथ ले ऊपर की टहल कर और आप ऋषि मुनि
 ब्राह्मणों को चुनाव यज्ञ का आरम्भ कीजिये । महाराज ! इनकी
 बात के सुनते ही राजा युधिष्ठिर ने सब ऋषि मुनि ब्राह्मणों को
 चुनाव कर पूछा कि, महाराज ! जो जो वस्तु यज्ञ में चाहिये सो
 र आना कीजै । महाराज ! इस बात के सुनते ही ऋषि मुनि
 ब्राह्मणों ने प्रथम देव देव यज्ञ की सब सामग्री एक पत्र पर लिख
 दी और राजा ने वहीं मँगवाय उनसे आगे धरवा दी । ऋषि
 मुनि ब्राह्मणों ने मिल यज्ञ की वेदी रची, चारों वेद पत्र सब
 ऋषि मुनि ब्राह्मण वेदी के बीच आसन बिछा २ जाय बैठे ।
 पुनि परित्र होय स्त्री सहित गाठ जोड़ बाँध राजा युधिष्ठिर
 भी आय बैठे और द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, धृतराष्ट्र, दुर्योधन,
 शिशुपाल आदि जितने योद्धा और बड़े बड़े राजा थे वे भी आन
 बैठे । ब्राह्मणों ने स्वस्तिवाचन कर गणेश पुजनाय, कलश स्थापन
 कर प्रस्थापन किया । राजा ने भरद्वाज, गौतम, वशिष्ठ, विश्वामित्र,
 वामदेव, पराशर, व्यास, कश्यप आदि बड़े २ ऋषि मुनि ब्राह्मणों
 का वरणा किया और उ होने बंद सब पढ़ पढ़ सब देवताओं

हतस यह बचन तो फूफू सजस विदा हो इतना कह पुत्र मति
 अपन घर गई कि, यह मा अपराध क्यों करेगा जो वृग्ग व हाव
 से मारेगा। महाराज। इतनी कथा सुनाय श्रीकृष्ण जी ने मन
 राजाआ क मन का मम मिटाय उन लकीरों को गिना जो एक
 एक अपराध पर खिंची थीं, गिनते ही मौ से बढ़ती हुई।
 तभी प्रभु ने मुदर्शनचक्र को आशा दी उमने भट शिशुपाल का
 मिर फाट डाला। उमर धड म जो ज्योति निकली मा एकर
 आकाश को धाइ फिर आय मयक देगन ही श्रीकृष्णाचन्द्र क
 मुग में समाइ। यह चरित्र दग सुर मुनि जयजयकार करन लग
 और पुष्प वपान लगे, उा काल श्रीमुरारी भक्त हिनकारी न
 उम तीमरी मुक्ति दी और उमकी क्रिया की। इतनी कथा सुन
 राजा परीक्षित न श्रीशुकन्ध जी से पूछा कि, महाराज। तीमरी
 मुक्ति प्रभु न किम भीति दी सो मुझे ममकाय क कहिये।
 श्रीशुकन्ध जी बोले कि, राजा। एक बार यह हिरण्यकशिपु
 हुआ, तब प्रभु ने नृसिंह अवतार ले तारा। दूसरी वर रावण
 भया, तो हरि ने रामान्वार ले उमका उद्धार किया अब तीसरी
 प्रिया यह है इसी मे तीमरी मुक्ति भई। इतना सुन राजा ने
 मुनि से कहा कि, महाराज। अब आगे कथा कहिये। श्रीशुकन्ध
 जी बोले कि, राजा। यज्ञ क चुकते ही राजा युधिष्ठिर न सब
 राजाओं को स्त्री सहित वाग पहराये प्राहाण्यो को अगणित दान
 लिया। देने का काम यज्ञ में राजा दुर्योधन का था, द्वेष कर एक
 की ठोर धनेरु दिये। इसमें उसका यश हुआ तो भी व

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज ! यज्ञ के पूर्ण होते ही श्रीकृष्णजी राजा युधिष्ठिर से रिदा हो सन सेना ले कुदुम्ब सहित हस्तिनापुर से चले २ द्वारकापुरी पधारे । प्रभु के पहुँचत ही घर २ मगलाचार होने लगा और सारे नगर में आनन्द हो गया ।

सुदामा-द्वारका-गमन

श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज ! अब मैं सुदामा की कथा कहता हूँ कि, जैसे वह प्रभु के पास गया और उसका दरिद्र कटा, सो तुम मन दे सुनो । दक्षिण दिशा की ओर है एक द्वाविड दश, तहाँ विप्र और वणिक बसते थे नरेश । जिस क राज्य में घर घर होता था भजन स्मरण और हरि का ध्यान, पुनि सन करत थे तप यज्ञ, धर्म, दान और साधु मन्त गो ब्राह्मण का सन्मान ।

चा०—ऐसे सजही लिहि ठौर । हरि पिन कछू न जाने और ॥

तिरिः दश में सुदामा नाम ब्राह्मण श्रीकृष्णचन्द्र का गुरभाई अतिदीन तनन्तीण महादरिद्री एसा कि जिसक घर पै न घास न खाने को कुछ रहता था । एक दिन सुदामा की स्त्री दरिद्र से अति बुराय, महादुख पाय, पति क निकट जाय, भय खाय, डरती कौपती बोली कि, महाराज ! अब इस दरिद्र के हाथ से महादुख पाते हैं । जो आप इसे खोया चाहिये तो मैं एक उपाय बताऊँ ब्राह्मण बोला—सो क्या ? कहा तुम्हारे परममित्र त्रिलोकीनाथ द्वारकावासी श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द हैं, जो उनक पास जाओ तो यह जाय । क्योंकि वे अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष के दाता

हैं। महाराज ! जब ब्राह्मणी न ऐसा समझाय कर कहा तब सुत्तना बोला कि, प्रिये ! तिन लिये श्रीकृष्णचन्द्र भी किसी को छुद्र नहीं दत्त, मैं भली भाँति से जानता हूँ कि जन्म भर मैंने किसी को कभी छुद्र नहीं दिया, तिन दिये फहाँ से पाऊँगा। हाँ तर नर से जाऊँगा तो श्रीकृष्ण जी क दर्शन कर आऊँगा। इस रात क सुनत ही ब्राह्मणी ने एक अनि पुराने घौले बख में जोडे से चावल बाँध ला दिये, प्रभु की भेंट क लिये और डोरी लोटा लाठी ला आगे धरी। तब तो सुदामा डोरी लोटा बाँधे पर डाल चावल की पोटली फॉर मं दनाय, लाठी हाथ मे ले गणेश को मनाय, श्रीकृष्ण जी का ध्यान कर, द्वारकापुरी को पधारा। महाराज ! वाट ही मे चलत क सुदामा भनही मन कहने लगा कि, भला धन तो सर प्रारब्ध मे नहीं पर द्वारका जान से श्री कृष्णचन्द्र आनन्द-कन्त का दर्शन तो पाऊँगा। इसी भाँति स शोच विचार करत क सुत्तना तीन पहर क बीच द्वारकापुरी म पहुँचा तो क्या दरता है कि नगर क चारो थोर समुद्र है आर बीच मे पुरी, वह पुरी कैसी है कि जिसक चहुँ थोर बन उपन फल फूल रह हों, तडाग बापी इन्पारा पर खँट परोह चल रह है ठार ठोर गायो क यूथ क यूथ चर रहे ह, तिनक साथ ग्वाल बाल न्यारे ही कुतूहल करते ह। इनती कथा कह श्रीशुकदव जी बोल कि, महाराज ! सुदामा बन उपन की शोभा निरख पुरी के भीतर जाय देख तो कञ्चन क मणिमय मन्दिर महासुन्दर जगमगाय रहे हैं, ठाँव ठाँव अथाड्यों में यदुवशी इन्द्र की सी सभा किये बैठ ह, हाट वाट चौहटो में

१२ की वस्तु विक रही है, घर घर जिवर विधर गान दान

हरि भजन और प्रभु का यश हो रहा है और सारे नगर निजामी मना आनद में है। महाराज ! यह चरित्र दयना २ और श्रीकृष्णचन्द्र का मन्दिर पूँछना सुनामा जा प्रभु की मन्दिर पार पर लडा हुआ। इमने किमी से डरत २ पूछा कि श्रीकृष्णचन्द्र जी वहाँ पिराजने हैं ? उमने रुहा कि, दयना ! आप मन्दिर क भीतर चाओ मन्सुल ही श्रीकृष्णचन्द्र जी रत्न सिंहासन पर बैठे हैं। महाराज ! इतना यत्न सुना सुनामा जी भीतर गया तो दयने ही श्रीकृष्णचन्द्र सिंहासन से उतर आगे बट भेट कर अनि प्यार से हाथ पकड उसे तो गय। पुनि सिंहासन पर त्रिठाय पाँर धोय चरखामृत लिया। आगे चन्दन चरच, अक्षत रागाय, पुष्प चढाय, धूप लीपकर, प्रभु न सुदामा की पूजा की।

चौ०—इतनी करक जोरे हाथ। कुशल जैम पूँछत यदुनाय ॥

इतनी कथा सुनाय श्री शुक्रद्व जी ने राजा से कहा कि, महाराज ! यह चरित्र देख श्रीहनुमन्नी जी ममेत आठा पटरानियाँ और सोलह मङ्गल एक मौ रानियाँ और सत्र यदुवशी जो उम समय वहाँ ये मन ही मन में कहने लगे कि, इम दरिद्री दुर्वत मन्तीन बख्शीन प्रादाया ने ऐमा क्या अगतो जन्म पुण्य किया था, जो त्रिलोकीनाथ ने इसे इतना माना ? महाराज ! अन्तयामी श्रीकृष्णचन्द्र उस काल सत्र के मन की बात समझ उनपे सन्दह मिटान को सुदामा से गुरु के घर की बात करने लगे। भाई ! तुम्हे वह सुधि है जो एक दिन गुरुपत्नी न हमे तुम्हें ईधन लेन भेजा था और जत्र वन से ईधन ले गठरियाँ बाँध शिर पर धर घर को चले तव आँधी और मेह आया और लगा मूसलाधार बपाने,

जल धल चारों ओर भर गया हम तुम न भोग कर महादुःख पाया
जाड़ा राग राग भर एक वृक्ष व नीचे रहे, भोर ही गुरुदेव बन में
हूँटने आय और अति करुणा कर आशीश द हमे तुम्हें अपने साथ
घर लाया लाये ।

इतना कह पुनि श्रीकृष्णचन्द्र जी बोले कि, भाई ! जब से तुम
गुरुदेव व यहाँ से रिखुडे तन से हमने तुम्हारा समाचार न पाया
था कि यहाँ ये और क्या करते थे ? अब आय दर्श दिखाय तुमने
हमें महा सुख दिया और घर पवित्र किया । सुदामा बोला—हे
कृपासिन्धु ! दीनप्रन्धु ! स्वामी अन्तर्यामी ! तुम सत्र जानते हो,
कोई बात ससार मे ऐसी नहीं जो तुम से छिपी हो ।

सुदामा-दारिद्र्यगमन

श्रीशुकदेव मुनि जी बोले कि, महाराज ! अन्तर्यामी श्रीकृष्ण
जी ने सुदामा की बात सुन और उसके अनेक मनोरथ समझ हँस
कर कहा कि, भाई ! भामी न हमारे लिये क्या भेंट भेजी है ? सो
देत क्यों नहीं ? काँख में किस लिये दबाय रहे हो ? महाराज ! यह
वचन सुन सुदामा तो सकुचाय शिर झुकाय रहा और प्रभु ने भट्ट
चावल की पोटली उसकी काँख से निकाल ली । पुनि खोल उसमें
स अति रुचि कर दो मुट्टी चावल खाय और ज्यो, तीमरी मुट्टी
भरी त्यो श्री रक्मिणी जी ने हरि का हाथ पकड़ा और कहा कि,
महाराज ! आपने दो लोकर तो इसे दिये, अब अपने रहने को भी
कोई ठौर रखेंगे कि नहीं । । यह तो ब्राह्मण सुशील कुलीन अति

वैरागी महात्यागी सा दृष्टि आना हे न्योकि इसे विभय पाने न कुत्र हर्ष न हुआ। इमने मने जाना कि ये लाभ हानि समान जानत हे, इन्हे पाने का हर्ष न पाने का शोक।

इतनी बात रक्षिणी जी क मुख से निकलत ही श्रीकृष्ण चन्द्र जी ने कहा कि, हे प्रिये! यह मेरा परम मित्र है। इसक गुण मैं कहाँ तक बतानूँ सदा सर्वत्र मेरे स्नेह मे मग्न रहता है और उसके आगे ससार के मुख तृणवत् समझता है। इतनी कथा कह श्रीशुक्रदत्त जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! ऐसे अनेक २ प्रकार की बातें कर प्रभु रक्षिणी जी को समझाय सुदामा को मन्दिर में लिवाय ले गये। आग पट्टरस भोजन करवाय, पान गिलाय, हरि सुदामा को फन सी सेज पर ले जाय बैठाया। वह पथ का हारा धरा तो था ही सेज पर जाय सुख पाय सो गया। प्रभु ने उस समय विश्वकर्मा को बुलाय क कहा कि तुम अभी जाय सुदामा क मन्दिर अति सुन्दर कञ्चन रत्न क रत्नाय निन में अष्टसिद्धि नयनिधि धर आआ जो इसे किसी बात की कात्ता न रहे। इतना वचन प्रभु क मुख से निकलते ही विश्वकर्मा वहाँ जाय बात की जान मे घनाय आया और हरि से कह अपने स्थान को गया। भोर होत ही सुदामा उठा स्नान ध्यान भजन पूजा से निश्चिन्त हो प्रभु क पास विदा होने गया। उस समय श्रीकृष्णचन्द्र जी मुख से तो कुछ न बोले पर प्रेम में मग्न हो आँखें डबडबाय शिथिल हो देखत रहे। सुदामा विदा हो प्रणाम कर अपने घर को चला और पन्थ में जाय मनहीं मन विचार करने लगा कि, भला भया जो मैंने प्रभु

वृष्ट न मांगा जो उनसे वृष्ट मांगना तो घे टन नो मही पर मुके ताभी तातवी समकन । कुष्ठ चिन्ता नही, प्राणगो को मे समकान लूंगा । श्रीकृष्णचन्द्र जी ने मेरा अनि मान मन्मान रिया आर निर्लोभी जाना, यही मुके लार है । महाराज ! मेमे मोच विचार करना करना मुदामा अपने प्राण व निरुष्ट आया, तो न्या दायना है कि व उठ ठौर है न घड टूटी मडैया, वही नो एक इन्द्रपुरी मी वम रही है । दायन ही मुदामा अनि दुखिन हो कहन लगा कि 'म नार' । नू ने य न्या रिया ? एक दुःख नो धा ही दुमरा आर दुःख रिया । वही ने मेगी भोंपडी क्या हुई ? आर प्राणगो कहीं गई, किमि पैंदूँ और किर टूँटूँ । इतना कह द्वार पर जाय सुगना ने द्वारपाल से पूँछा कि यह मन्दिर अति सुन्दर किरार है ? द्वारपाल ने कहा श्रीकृष्णचन्द्र जी व मित्र सुगामा व हैं । यह बात सुन मुदामा ज्या कुद कहने को हुआ त्या भीतर म दाय उनकी प्राणगो अच्ये वन्द आभूषण पडिन नस शिव मे शृङ्गार किय पाव ताय सुगनर लगाय गरिया की साथ लिय पनि व निरुष्ट आइ ।

चौ०-पावन पर पाटनर डारे । हाथ जोड व वचन उचारे ॥
 ठाँडे क्या मन्दिर पग धारी । मनसा मोच करो तुम न्यारी ॥
 तुम पाये विश्वकर्मा आये । निन मन्दिर पल माँझ धनाये ॥
 महाराज ! इतनी रात प्राणगो व सुग मे सुन मुदामा जी मन्दिर म गये और अति विभव दाय महा उदास भय । प्राणगो बोली—स्वामी धन पाये लोग प्रसन्न होते हैं तुम उदास हुए इसका । है ? सो कृपा कर कहिये, जो मर मन का सन्दह

जाय । सुनामा बोला कि, 'प्रिये ! यह माया बड़ी ठगनी है, इमने सारे समार को ठगा है और ठगती है, और ठगंगी । सो प्रभु ने मुझे दी और मेरे प्रेम की प्रतीति न की । मैंने उनसे कब माँगी थी जो उन्होंने मुझे दी ? इमी मे मेरा चित्त उगास है । प्राद्वगी बोली स्वामी जी ! तुमन तो श्रीकृष्णाचन्द्र मे कुछ न माँगा था पर व अन्तर्व्यामी घट २ की जानते हूँ मेरे मन में धन की वासना थी सो प्रभु ने पूरी की । तुम अपन मन म आर कुछ मन समझो । इतनी कथा सुनाय श्रीशुक्रजी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज ! इस प्रसंग को जो सदा सुन सुनाया, सो सत्र जगन मे आय दुख कभी न पाया, और अन्तकाल बैकुण्ठ धाम जाया ।

वसुदेव-यज्ञकरण

श्रीशुक्रजी बोले कि, महाराज ! अब मैं सत्र ऋषियों के आने की और वसुदेव जी के यज्ञ करने की कथा कहता हूँ तुम चित्त दे सुनो । महाराज ! एक दिन राजा उग्रसेन, शूरसेन, वसुदेव, श्रीकृष्ण, बलराम, मन्यु बधुवशिया समेत सभा किये बैठे थे और सत्र दश दश के नरेश वहाँ उपस्थित थे कि इस बीच श्रीकृष्णाचन्द्र आनन्दकण्ठ के दर्शन की अभिलाषा कर व्यास, बर्मिष्ठ, विश्वामित्र, यामदग, पराशर, भृगु, पुलस्त्य, भरद्वाज, मार्कण्डेय आदि अष्टासी सहस्र ऋषि वहाँ आय आर तिनके साथ नारद जी भी । उन्हें देखते ही सभा की सभा सत्र उठ खड़ी हुई, पुनि सत्र दण्डवन कर पाटम्बर के पाँवों के डान सत्रको सभा में ले

गुण गान व, चरण बन्दीजन यश उपानते ५, उरेशी श्री
 अम्भरा नाचती थीं और दयता अपन ० विमानों में बैठे पून
 वरावन व और इधर मय मँगनी लोग गाय वजाय महलाचार
 करत २ और याचन जयजयकार । इसमें यज्ञ पूर्ण हुआ और
 वसुन्ध जी पूर्णाहुति व श्राद्धों को पाटम्बर पहिराय अलकृत कर
 रत्न धन नहुन सा लिया और उन्होंने बड़ मन्त्र पढ़ ० आशीर्वाद
 दिया । मय दश ० ५ ऐशा ५ भी वसुन्ध जी ने पहिराय
 और जिमाथा, पुनि उन्हाने यज्ञ की भेट कर ० रिग हो अपनी
 वाट ली । महाराज ! सय राजाआ व जात ही नारद जी समेत
 सारे ऋषि मुनि भी विरा हुए । पुनि नन्दराय जी गोपी गोप
 ग्वालनाल समत सय वसुन्ध जी से रिग होन लग, उम समय
 की धान कुछ कही नहीं जाती । इधर तो यदुनशी करुणाकर
 अनेक ० प्रकार की बातें करत व और उपर मय प्रजपासी, सय
 वसान कुछ कहा नहीं जाता वह सुख दयन ही बनि आन ।
 निदान वसुन्ध जी और श्रीकृष्णचन्द्र बलराम जी न सय समत
 नन्दराय जी को समझाय बुझाय पहिराय और बहुत सा
 धन द रिग किया । इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि,
 महाराज ! इस भौति श्रीकृष्णचन्द्र और बलराम जी पत्र न्हाय
 यज्ञ कर सय समेत जय द्वारकापुरी में आये तो घर ० आनन्द
 महल नय बधाये ।

देवकी मृतक पुत्र-जीवन

श्रीशुक्रदेव जी बोले कि, महाराज ! द्वारकापुरी के बीच एक दिन श्रीकृष्णचन्द्र और वनराम जी जो वसुदेव जी के पास गये भी व इन दोनों भाइयों को दया यह वान मन में विचार उभरे हुए कि कुन्हेत्र में नारद जी ने कहा था कि श्रीकृष्णचन्द्र जगत् के कर्ता हैं और हाथ जोड़ बोले कि, हे प्रभु ! अलग अलग अग्निज्ञानी, सत्ता सजती हैं तुम्हें कमला भद्र लम्बी । तुम ही सत्ता देवों के देव कोई नहीं जानता तुम्हारा भेष । तुम्हारी ही ज्योति है चन्द्र, सूर्य, पृथ्वी, आकाश, तुम्हीं करत हो सत्ता ठार प्रकृति । तुम्हारी माया है प्रकृत, जमने सार समार को भुलाय रक्ता है, त्रिलोकी में सुर नर मुनि एसा कोई नहीं जा सकत हान मे बचा हो । महाराज ! इतना कह पुनि वसुदेव जी बोले कि, नाय ।

चोपाइ

कोउ न भेत् तुम्हारो जानै । वदन बाँझ अगाय बखानै ॥
शत्रु मित्र नहिं कोउ निहारो । पुत्र पिता न सहोदर प्यारो ॥
पृथ्वी भार हरण अयतरो । जन क हतु भन् वृत्त धरो ॥

महाराज ! ऐसे कह वसुदेव जी बोले कि, हे कृष्णसिन्धु ! दोनरन्धु । जैसे आपने अनरु २ पतितों को तारा, तैसे कृपा कर मरा भी निस्तार कीजें जो भयमागर के पार हो आपक शुभ गाऊँ । श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे पिता ! तुम जानी होय पुत्रों की बड़ाई क्या करत हो ? दुक आप ही मन में विचारो कि

मा रूप स खोला और बहुत मा ट्योना तब तो लाज छोड़ कर व हाथ जोड़ व मुँ को फाट व चिनियाव यह लिखना हूँ।

उम दिन जो मैं हरियाली दान्यन को गया था। एक दिन मर सामने कनौतियाँ उठाए आगई उसर पीछे मैंन घोडा घग डुट फेका। जब तक उजाला रहा मनर घुग में यददा क्रिया चर सूरज हुआ मरा जी उगा मुहानी मी अमराइयाँ ताड व मैं उन मे गया तो उन अमराइयों का पत्ता पत्ता मेरे जी का गाहर हुआ। वहाँ का य मोंहिला है, कुछ रटियाँ भूला डाने भूल रही थीं। उनकी मरधरी फोड गनी येनकी महाराज जगतपरकाम की बंटी हें। उन्होंने यह अँगूठी अपनी मुके दी और मरी अँगूठी उन्होंने टोली और लिगोट भी लिख दी मो यह अँगूठी उनकी लिखोट समेत मरे लिखे हुए थे साथ पहुँचनी है। 'अब आप पड लीजिए जिम में बेट का ची रह जाय मो कीजिए।' मन्नागज और मन्नारानी न अपन बेटे क लिख हुए पर मोने व पानी से चों लिखा। 'हम दोनों ने इस अँगूठी आर लिगोट को अपनी आँखों से मना अब तुम इतने कुछ कुटो पचो मत। जो गनी बंतीकी ये माँ राप तुम्हारी धान मानत हें तो हमारे समरी और समधिन हँ आंग दोना राज एक हो जाँगे और जो कुछ नाह नूह ठहरेगी तो जिम डोल से बन आयेगा डाल बलवार के धल तुम्हारी दुल्हन हम तुम से मिला देंगे। आज मे उदास मत रह करो ग्वलो कृणो दोलो धानो आनदें करो। अच्छी घडी शुभ मुदूरत मोच क तुम्हारी समुरान में किसी धाम्दन को भेजते हें जो बात चीत चाही ठीक कर

लाते ।' और शुभ घडी शुभ मुहूरत देख के रानी कतकी के माँ बाप के पास भेजा ।

वाम्हन जो शुभ मुहूरत देखकर हडनडी से गया था उस पर घुरी घडी पडी । सुनते ही रानी कतकी क माँ बाप ने कहा 'हमारे उनके नाता नहीं होने का । उनक बाप दाद हमारे बाप दाद क आगे सदा हाथ जोड कर धाते किया करते थे और दुक जो तेवरी चढी देखते थे बहुत डरत थे । क्या हुआ जो अरन वह बढ गण ऊँचे पर चढ गए, जिन के माये हम बाँएँ पाँव के अँगूठे से टीका लगाएँ वह महाराजों का राजा हो जाव । किसी का मुँह जो यह बात हमारे मुँह पर लागे ।' वाम्हन ने जल भुन के कहा 'अगले भी विचारे ऐसे ही कुछ हुए हैं । राजा सूरजभान भी भरी सभा में कहत थे हममें उनमें कुछ गोत का तो मेल नहीं । यह कु वर की हठ से कुछ हमारी नहीं चलती नहीं तो एसी ओछी बात कन हमारे मुँह से निकलती ।' यह सुनत ही उस महाराज ने वाम्हन क सिर पर फूलों की चगेर फेंक मारी और कहा 'जो वाम्हन की हत्या का धडका न होता तो तुम्हको अभी चम्की म दलवा डालता' और अपन लोगो से कहा 'इसको ले जाओ और उपर एक अँधेरी कोठरी मे मुँद रमरो ।' जो इस वाम्हन पर बीती तो सन उदैभान न माँ बाप ने सुनी । सुनते ही लडन को अपना ठाट बाँध भादो क दल बादल जैसे धिर आते हैं चढ आया । जन दोनो महाराजो में लडाई होने लगी रानी कतकी सायन भागो क रूप ममान रोने लगी और दोनों के जी में यह आ गइ यह कैसी चाहत जिस मे लोहू बरसने लगत

और अच्छी बात को जी तर्जने लगा। कुँवर ने चुपक स यह लिख भेजा 'अपने मेरा कलेंजा टुकड टुकडे हुआ जाता है। दोनों महाराजों को आपस में लडने को किसी डौल स जो हो सग नो तुम मुझे अपने पास बुला लो हम तुम दोनों मिलक किसी और देश निकल चले होनी हो मो हो मिर रहता रहे, जाना जाय।' एक मालिन जिनको फूलफली कर सग पुकारते व उमने उस कुँवर को चिट्ठी किसी फल की पॅपडी में लपट मपेट कर रानी पेंतकी तक पहुँचा दी। रानी ने उस चिट्ठी को अपनी आँखों लगाया और मालिन को एक थाल मोती दिये आर उस चिट्ठी की पीठ पर अपने मुँह की पीक से यह लिखा 'ऐ मरे जी के गाहक, जो तू मुझे वाटी वोटी करक चील फौरो को टे डाले तो भी मरी आँखों पैन और कलेजे सुग हो पर यह बात भाग चतर की अच्छी नहीं। इसमें एक थाप नाद को चिट लग जाती है आर जत तक माँ थाप जैसा कुछ होता चला आता है, उमी डौल से बेटी को किसी पर पटक न गारें और सर से किसी क चेपक न दें तत तक यह ग्य जो तो क्या जो करोर जी जाते रहे, कोई बात नो हमें रचती नहीं।'।

यह चिट्ठी जो पीक भरी कुँवर तक जा पहुँची उस पर कइ एक थाल सोने क हीरे मोती पुखराज के खचाखच भरे हुए निझावर करके लुटा देता है। और जिनकी उमे बेचैन थी उससे चौगुनी पचगुनी हो जाती है और उस चिट्ठी को अपने उस गोरे पर बाँध लेता है।

जगतपरयास अपने गुरु राजा, जो कैलाश पहाड पर रहता था, लिये भजन है 'सुख त्मारा सदाय फाजिये, महा कठिन हम पर निपता था पडी है। राजा मूरजभान को अब यहाँ तक बाय बँटक ने लिया है जो उन्होंने हम से महागजा से डौल लिया है।'

कैलास पहाड जो एक डौल चाँदी का है उस पर राजा जगत-परकास का गुरु, जिसको महेन्द्रगिर मय इन्द्रलोक प लोग कहत थे, ध्यान ज्ञान से कोई उन्हे लार अतीता के साथ ठाकुर के भजन से दिन रात लगा रहता था। सोना रूपा तपि गंगे का पताना तो क्या और गुटका मुँह से लर उडना परे रहे उसको और घाने इस दर की ध्यान में था जो कहे मनन से बाहर है। मद्र मोन रूप का दरसा देना और जिस रूप में चान्ता हो जाना सब कुछ उसका आग लन था, गाने बजाने से महादेव जी उट उसका आग कान पकडते थे। सरस्वती जिसको मय लोग कहते थे उन्हे भी कुछ गुनगुनाना उसी से मीगना था। उसके सामने ठा राग छत्तीस रागिनियाँ आठ पहर रूप बन्धियो का सा धर हुए उसकी सेवा में सदा हाथ जोडे गडी रहती थीं और वहाँ अतीतों को गिर कह कर पुकारते थे—भैरो गिर, विभास गिर, हिंडोल गिर, मघनाथ, कदारनाथ, दीपकसेन, जोतीमरूप, सारङ्ग रूप और अतीतिने इस दर से कहलाती थीं गृजरी, टोडी, असावरी, गौरी, मालमिरी, बिलावली। जब चाहता अधर से सिंहासन पर बैठ कर उडासे फिरता था और नब्ब लाख अतीत गुटक अपने

मुँह में लिये गेरुवे वसत्र पहने जटा निगरे उसमें साथ होते थे। जिस घड़ी रानी केतकीके चापकी चिट्ठी एक बगला उसके घर तक पहुँचा देता है गुरु महेन्द्र गिर एक चिंघाड़ मार कर दल बादलों को ढलका देता है, नवम्बर पर बैठे भभूत अपने मुँह से मल कुत्र कुत्र पठन्त करता हुआ नाम क घोड़े के पीठ लगा और सब अतीत मृगजालों पर बैठे हुये गुटके मुँह में लिए हुए बोल उठे "गोरख जागा और मुद्रन्दर भागा"। एक आँस की झपक में वहाँ आ पहुँचता है जहाँ दोना महाराजों में लड़ाई हो रही थी। पहले तो एक काली आँधी आइ फिर ओले बरसे फिर टिड्डी आई। क्रिमी को अपनी सुत्र न रही। राजा सूरजभान क जिनने हाथी घोड़े और जितने लोग और भीड़ भाड़ थी कुत्र न समझा कि क्या क्रिधर गई और उन्हे कौन उठा ले गया। राजा जगतपरकास क लोगो पर और रानी कतकी क लोगो पर केवडे क बूँदो की नन्ही नन्ही पुहार सी पडने लगी। जब यह सब कुत्र हो चुका तो गुरु जी ने अतीतियों से कहा 'उदैभान सूरजभान लक्ष्मीनास इन तीनों को हिरनी हिरन बनाऊ किसी वन में छोड़ दो और जो उनके साथी हों उन सभा को तोड़ फोड़ दो।' जैसा कुत्र गुरु जी ने कहा मट पट वही किया। त्रिपत का मारा कुँवर उदैभान और उसका चाप वह राजा सूरजभान और उसकी मा लक्ष्मीनास हिरनी हिरन बन गए। हरी घास नई बरस तक चरते रह और उस भीड़ भाड़ का तो कुत्र थल बेडा न मिला क्रिधर गए और फटा व। वस यहाँ की यहीं रहने दो। फिर सुनो। अब रानी

केतकी ने बाप महाराजा जगनपरमात्मा को बुझाया । उन्होंने यह था
 धर गुरु जी ने पाव पर गिरा और सब न कर हुआ धर कहा
 'महाराज यह आप ने बड़ा काम किया । हम सब को सब किया ।
 जो आज आप न पहुँचते तो क्या रहा था । सब ने नर सिद्धि
 की ठान ली थी । इन पापियों ने कुछ न चाँगी यह करने से ।
 राज पाद हमारा अब निदावर करके चिन्मयी चाहिये दे दानिया ।
 राज हमने नहीं थम सकता । नूरामान के हाथ में आपने
 बचाया । अब कोई जका चचा चदरमान चद आनेगा तो क्या
 बचना होगा । आपन आप में तो सफल नहीं फिर ऐसे राम का
 फिट्टे मुँह कहाँ तक आपको मताया धर । 'जोगी महेंद्र गिर ने
 यह सुनकर कहा 'तुम हमारे बेटा हो, आनन्द करो, दन
 दनाओ, मुस खैन सं रहो । अब वह कौन है जो तुम्हें शक्ति मग
 कर शार टप म देग मर । यह रामधर और यह ममूत
 हमन तुमको दिया । जो कुछ गेसी गाढ़ पडे तो इसमें एक
 रोंगटा तोड आग में फूँक दीजिये । यह रोंगटा फुटने न
 पागगा जो बात की बात में हम आ पहुँचेंगे । रहा ममूत, लो इन
 लिये है जो कोइ इसे अञ्जन करै वह सबको देखे और उसे कोई न
 देखे जो चाहें सो करै ।

गुरु महेंद्र गिर के पाव पूजे और 'धन धन महाराज' कहें ।
 उनसे तो कुछ द्विपात्र न था । महाराज जगनपरमात्मा उनकी मुर्दल
 करत हुए अपनी रानियों के पास ले गये । सोने रूपे के फूल गोद
 भर भर सबन निदावर की और साथ रगडे । उन्होंने मरकी पीरे

ठोकी । रानी कतकी ने भी गुरुजी व दण्डवत की पर जी में बहुत सी गुरुजी को गालियाँ दी । गुरुजी सात दिन सात रात यहाँ रह कर जगतपरकास को सिंहासन पर बैठा कर अपने बध्म्वर पर बैठ उसी डोल में कैलास पर आ धमके और राजा जगतपरकास अपने अगले ढव से राज करने लगा ।

एक दिन रानी कतकी ने अपनी मा रानी कामलता से मुलाव में डाल कर यों कहा और पूछा—‘गुरुजी गुसाईं महेश्वर गिर ने को भभूत मेरे बाप को दिया है, वह कहा रखा है और उमसे क्या होता है ?’ रानी कामलता बोल उठी ‘तेरीवारी । तु क्यो पढ़ती है ?’ रानी कतकी कहन लगी ‘आरें मिचौवल खेलने के लिये चाहती हूँ, अब अपनी सहेलियों के साथ खेलूँ और चोग चनूँ तो मुझको कोई पकड न सके’ । महारानी ने कहा वह खेलने के लिये नहीं है । ऐसे लटन किसी बुरे दिन के सम्भालन को डाल रखत हें क्या जाने कोई घडी कैसी है कैसी नहीं ।’ रानी कतकी अपनी मा की इस बात पर अपना मुँह थुथा कर उठ गई और दिन भर खाना न खाया । महाराज ने जो बुलाया तो कहा मुझे रुच नहीं । तब रानी कामलता बोल उठी ‘अजी तुमने सुना भी, बेटी तुम्हारी आर मिचौवल खेलने के लिए वह भभूत गुरुजी को दिया भाँगनी थी । मैंने न दिया और कहा लडकी वह लडकपन की बाने अच्छी नहीं किसी बुरे दिन के लिए गुरुजी द गान हे इसी पर मुझसे रुठी है बहुतरा कहलाती हूँ माननी नहीं ।’

महाराज ने कहा 'भभूत तो क्या मुझे तो अपना जी भी उससे
 प्यारा नहीं, ज्वरे एक पहर क रहल जाते पर एक जी तो स्या
 जो करोर जी हो तो दे डाले ।' रानी केनकी को टियिया मे से
 थोडा सा भभूत दिया । कई दिन तक आँसु मिचौवल अपनी
 माँ बाप के मामने सहेलियो न साथ गलती सजको हँसाती रही
 जो सौ मो थाल मोलियो के निद्वारर हुआ किण । क्या कहँ !
 एक चुहल थी जो कहिये तो कुराडो पोथिया में ज्यो की त्यो
 न आ सरे ।

एक रात रानी कतकी उमी ध्यान मे मदनवान से यो बोल
 उठी 'अब मैं निगोडी लाज से कुट करती हूँ तू मेरा साथ न ।'
 मदनवान ने कहा 'क्योकर' । रानी केनकी ने वह भभूत का टोना
 उसे बताया और यह सुनाया 'यह सब आँसु मिचौवल क भाई
 भाप्ये मेंने इसी दिन के लिए कर रखे थे ।' मदनवान बोली 'मेरा
 कलेजा धरथराने लगा । अरे यह माना कि तुम अपनी आँसु मे
 उस भभूत का अजन कर लागी और मरे भी लगा दोगी तो हमे
 तुम्हे कोई न दयेगा और हम तुम सब को दखेंगी पर ऐसी हम
 कहाँ जी चली हैं जो बिन साथ जोवन लिए वन वन में पडी कटका
 करे और हिरनो की सींगो पर दोनों हाथ डाल कर लटका करे
 और जिसके लिए यह सब कुद्र है सो वह कहाँ और होय तो क्या
 जाने यह रानी कतकी है और यह मदनवान निगोडी नोची एसोटी
 उजदी नली है । चूल्हे और भाड में जाय वह जिसन
 मैं बाप का राज पाट सुन नींद लाज छोड

नन्हियो व कछहरों मे फिरना पडे सो भी नेडोल जो वह अपने रूप में होते तो भला थोडा ऋत आमरा था । ना जी यह तो हम से न हो सनेगा जो महाराज जगतपरकास और महारानी कामलता का हम जान वूमकर घर उजाडे और उनकी जो इकजोती लाडली बेटी है उसको भगा ले जायें और जहाँ तहाँ उसे भटकावें और बनासपत्ती सिखावे और अपने चाडे को हिलावे । जब तुम्हारे और उसर माँ बाप में लडाई हो रही थी और उत्रे उस मालिन के हाथ तुम्हें लिख भेजा था जो मुझे अपने पास बुलालो, महाराजों को आपस मे लडने दो जो होनी हो सो हम तुम मिल के किमी देम को निकल चलें । उस दिन न समझीं तब तो वह ताव भाव दिखाया अत्र जो वह कुँवर उदैभान और उसके माँ बाप तीनों जी हिरनी हिरन घन गए । क्या जाने किरर होंगे । उनर घ्यात पर इतनी कर बैठिए जो किसी न तुम्हारे घराने में न की अच्छी नहीं । इस बात पर पानी डाल दो नहीं तो पछतावोगी और अपना क्रिया पाओगी । मुझ से कुछ न हो सनेगा । तुम्हारी जो कुछ अच्छी वत होती तो मेरे मुँह से जीत जी न निकलती पर यह बात मेरे पेट नहीं पच सकती । तुम अभी अल्हड हो तुमने अभी कुछ दरजा नहीं जो ऐसी बात पर सचमुच ढलात्र देखूंगी तो तुम्हारे बाप से कहकर वह भभूत जो वह सुरा निगोडा भूत मुद्धन्दर का पूत अवधूत दे गया है, हाथ मुरक्वा कर छिावा लूंगी ।' रानी केतकी ने यह रूखाइयाँ मदनबान की सुनकर हँस कर टाल दिया और कहा 'जिसरा जी ठिकाने में न हो उसे ऐसी लाखों सूकती हैं पर कहने और करने में बहुत सा फेर है । भला यह कोई अधेर

है जो मैं माँ बाप राज पाट लाज छोड़कर हिरन व पीछे
रोडनी परछालें मारती किसे पर श्री नृतो वडी शायनी
चिटिया है जो यह बात मच जानी और गुफ से लटन
लगी ।'

दस पन्द्रह दिन पीछे एक दिन रानी पतकी दिन २१
मदनराज के वह भभूत आँसो में लगा के घर में बाहर निकल गड।
कुछ वदने में आता नहीं जो माँ बाप पर हुई। सब न यह बात
ठहराई, गुरु जी न कुछ समझ कर रानी पतकी को अपने पास
बुला लिया होगा। महाराज जगतपरकास और महारानी कामलता
राज पाट उम प्रियोग में छोड़ छाड व एक पहाड की चोटी पर
जा बैठे और किसी को अपने लोगों में म राज धामन को छोड़
गये। बहुत दिना पर पीछे एक दिन महारानी न महाराज जगत-
परकास से कहा 'रानी पतकी का कुछ भेद जानती होगी तो
मदनराज जननी होगी। उसे बुलाकर पूछो तो'। महाराज ने
उसे बुला कर पूछा तो मदनराज न सब बात खोलियाँ। रानी
पतकी के माँ बाप ने कहा 'श्री मदनराज जो न भी उसके साथ
होती हो हमारा जी भरता—अब जो वह तुम्हें ले जाय तो कुछ
हचर पचर न कोजियो। उसके साथ हो लीजियो जितना भभूत
है नू अपने पास रख। हम यहाँ इस रात को चूल्हे में डालेंगे।
गुरु जी ने दोनो राज्य का खोज खोया। कुँवर उदैमान और
उसके माँ बाप दोनों अलग हो रहे। जगतपरकास और कामलता
को यों तलपट किया।

आतीं'। मदनमान भी उनमें हँसने को निकली। अजन लगाये हुए 'रानी पेनकी रानी पेनकी' कहती हुई पड़ी फिरती थी। बहुत दिनों पीछे कहीं रानी वतकी भी हिरनों की पहाड़ों में 'उभैमान उभैमान' चिंघाडानी हुई आ निकली। एक ने एकको ताड़ कर पुकारा 'अपनी तनी आँखें धो डालो'। एक ऊपर पर बैठ कर दोनों की मुठभेड़ हुई। लगभग ऐसी रोशियाँ जो पहाड़ों में कूक सी पड़ गई।

दोनों जनियाँ एक अच्छी सी छाँव को ताड़ कर आ बैठियाँ और अपनी अपनी दोहराने लगीं।

रानी वतकी ने अपनी वीती सब कही और मदनमान वही अगला मीकना भीका की और उनमें माँ बाप ने जो उनके लिए जोग साधा या जो वियोग लिया था सब कहा। जब यह सब कुछ हो चुकी तब फिर हँसन लगी।

पर मदनमान से कुछ रानी वतकी के आँसू पड़ते चने। उन्ने यह बात कही 'जो तुम इहाँ ठहरो तो मैं तुम्हारे उन उजड़े हुए माँ बाप को चुपचाप ले आऊँ और उन्हीं से इस बात को ठहराऊँ। गोसाईं महेंद्र गिर जिमकी यह सब करतूत है वह भी इन्हीं दोनों उजड़ हुए की मुट्टी में है। अब भी जो मरा रहा तुम्हारे ध्यान चढ़े तो गए हुए दिन फिर सन्ते है। पर तुम्हारे कुछ भाव नहीं हम क्या पडो सकती हैं। मैं इस पर थोड़ा उठानी हूँ'। बहुत दिनों पीछे रानी वतकी ने इस पर अच्छा कहा और मदनमान को अपने माँ बाप के पास भेजा और चिट्ठी अपने

हाथों से लिये भेजी जो आप से हो मरे तो उस जोगी से ठहरा के आये ।

मदनपान रानी वनकी को अपनेली छोडकर राजा जगनपरकाश और रानी कामलता जिस पहाड पर बैठी थीं भट से आदश करने आ खडी हुई और कहने लगी 'लीजे आप राज कीजे आप का घर नए सिंग स वसा और अच्छे दिन आए । रानी वनकी का एक बाल भी बाँका नहीं हुआ । उन्हीं के हाथों की लिराी चिट्ठी लाइ हूँ, आप पढ लीलिए । आगे जो जी चाहे सो कीजिये' । महाराज ने उम वयम्बर में से एक रोगटा तोडकर आग पर खन के फूँक दिया । बात की रात में गोसाईं महे दगिर आ पहुँचा और जो कुछ नया सर्वांग जोगी जोगिन का आया आँसो दया । मनकी धानी लगाया और कहा 'वयम्बर तो इसीलिए मै सोपा गया था कि जो तुम पर कुछ हो तो इसका एक बाल फूँक दीजियो । तुम्हारी यह गत हो गयी । अब तक क्या कर रहे ये और किन नांदों में सोते व । पर तुम क्या करो ? यह खिलाडी जो रूप चाहे सो दिग्गारै, जो नाच चाहे नचापै । भभूत लडकी को क्या दना था । हिरन हिरनी उदैभान और सूरजमान उसर बाप और लछमीवास उसकी माँ का मैंने कया था । फिर उन तीनों को जैसा का तैमा करजा कोई बडी बात न थी । अच्छा, हुई मो हुई । अत्र उठ खलो । अपन राज पर निराजो आर ब्याह की ठाठ करो । अब तुम अपनी बेंटी को समटो । कुँवर उदैभान को मैंने अपना बेटा किया और उमको लेक मैं ब्याहने चहुँगा' । महाराज यह सुनते ही अपनी गदी पर जा

थैठ और उसी घड़ी यह कह दिया 'सारी छत्ता और कोठों को गोटे से मटो और सोने और रूपे व मुनहरे रुपहरे सेहरे मय झाड पहाडों पर बाँध दो और पेडों में मोती की लडियाँ बाँध दो और कह दो—चालीस दिन चालीस रात तक जिस घर में नाच आठ पहर न रहेगा उस घरवाले से मैं रुठ रहूँगा और यह जानूँगा यह मरे दुःख सुख का साथी नहीं। और छ' महीने कोई चलने वाला कहीं न ठहरे रात दिन चला जाय'। इस डेरफर में वह राजा था। सब कहीं यही डौल था।

फिर महाराजा और महारानी और महेन्द्र गिर मदनवान व साथ जहाँ रानी कतकी चुपचाप सुन सींचे हुए बैठी थी चुपचुपात वहाँ आन पहुँचे। गुरु जी रानी कतकी को अपनी गोद में लेकर कुँवर उडैमान का चढावा चढा लिया और कहा 'तुम अपने माँ बाप व साथ अपने घर सिधारो अत्र मैं बेटे उडैमान को लिये हुए आता हूँ'। गुरु जी गोसाईं जिनको लखडौत है मो तो वह मिशरते हैं। आगे जो होगी सो रहन में आवेगी। यहाँ पर धूम धाम फैलाना अब ध्यान कीजिये। महाराज जगतपरकास ने अपने सारे दश में कह दिया 'यह पुकार द जो यह न करेगा उसकी बुरी गति होवगी। गाँव गाँव में अपने सामने त्रिपोले बना बना के सूहे कपडे उन पर लगा व गोड धनुष को और गोखरू रूपहले सुनहरे की किरनें आर डाँक टाँक टाँक रफ़ो और जिनने बड, पीपल नये पुराने जहाँ जहाँ पर हा उन क फूल क सेहरे बडे बडे ऐसे जिसमें मिर से लगा पैर उँ बाँधो।

चातुका

पौदों ने रंगा क सूहे जोडे पहने ।

मन पाँच में डालियो ने तोडे पहने ॥

वूट वूट न फूज फूल क गहने पहने ।

जो गहुत न ये तो थोडे थोडे पहने ॥

जितन डहडहे आर हरियावल फूल पात थ, मबने अपन हाथ मे चहचही महदी की मजावट की सजावट क मात्र जितनी समावट में ममा मन, कर लिए और जहाँ जहाँ नवल व्याही दुल्हने नन्हीं नन्हीं फलिया की और मुदागिने नई नई कलियो क जोडे पैखुडियो के पहने हुइ थी । मबने अपनी अपनी गोद मुदाग और प्यार क फूल और फनो स भरी और तीन वरम का पैमा सारे उस राजा क राजभर मे जो लोग दिया करते थ, उम डर से हो सकता था खेती घारी करने हल जोत क और कपडा लत्ता बेचकर सो सब उनको छोड दिया और कहा जो अपने अपने बरो में बनावट की ठाट करे । और जितने राजभर में कुँए थ रँडसालो की रँडसाले उनमें उडेल गई और सारे बनो और पहाड तलिया में लाल पटा की कमकमाइट को रानो दिखाई देन लग्यो । और जितनी भीलें थीं उनमे कुसुम और टेसू और हारसिगार पड गया और कसर भी थोडी थोडी धोले में आ गई । कुनग से लगा जड तलक जितन भाड भद्दाडो मे पत्ते और पत्ती धँधी थी उन पर रुपहरी सुनहरी डारु गोद लगा कर चिपका दिए और सभो को कह दिया जो सूही पगडी और सूहे चागे जिन कोई

किसी डोल किसी रूप से फिर चले नहीं और जिनन गरैये
 त्रत्रैये भौंड भगनिए रहसगारी और सनीत पर नाचन वाले
 व सन को कह दिया जिस जिम गाँव में जहाँ हों अपने अपने
 ठिकानों से निकल कर अच्छे अच्छे विद्योने प्रियाकर गान नाचते
 कृदते रहा करें।

यहा की घात और चुहले जो कुछ हैं सो यहीं रहने दो अब
 आगे सुनो। जोगी महेन्द्र और उसने नब्ये लाख अनीन
 ने सारे बन के बन छान मारे पर कहीं कुँवर उँभान और उसके
 माँ बाप का ठिकाना न लगा तब उन्होने राजा इन्द्र को
 चिट्ठी लिख भेजी। उसे चिट्ठी में यह लिखा हुआ था—‘इन
 तीनों जनो को हिरनी हिरन कर डाला था, अब उनको ढँढता
 फिरता हूँ कहीं नहीं मिलत और मरी जितनी सकत थी अपनी
 सी बहुत कर चुका हूँ। अब मरा मुँह से निकला कुँवर
 उँभान मरा पेटा में उसका बाप और समुराल में मन ब्याह
 का ठाठ हो रहा है। अब मुझ पर पिपत्ती गाढी पडी जो तुम
 से हो सक, करो।’ राजा इन्द्र चिट्ठी को देखत ही गुरु महेन्द्र
 के देखने को मन इन्द्रासन ममट कर आ पहुँचे और कहा
 ‘जैसा आपका बेटा वैसा मरा बेटा। आपका माथ में सारे
 इन्द्रलोक को समेट कर कुँवर उदेभान को ब्याहने चढ़ंगा।’
 गोसाँई महेन्द्र गिर न राजा इन्द्र से कहा ‘हमारी आप
 की एक ही बात है पर कुछ ऐसा सुम्नाइये जिममे कुँवर
 हाथ आ जाये।’ राजा इन्द्र ने कहा ‘जिनन गरैये
 , उन सबको साथ लेकर हम और आप सारे

बनो मे फिरा करें कहीं न कहीं ठिकाना लग जायगा।' गुरु ने कहा 'अच्छा।'

एक रात राजा इन्दर और गोसाईं महेन्द्र गिर निरपरी हुई चादनी में बैठे राग मुन रहे थे करोडो हिरन राग के ध्यान में चौकड़ी भूल आस पास सर झुकाए खड़े थे। इसी में राजा इन्दर ने कहा 'इन सत्र हिरनों पर—मेरी सकत गुरु की भगत फुरे मन्त्र ईश्वरोवाचा—पढ के एक एक छीटा पानी का दो।' क्या जाने वह पानी कैसा था छीटो क माथ ही कुँवर उदैभान और उसके माँ बाप तीनों जने हिरनों का रूप छोड कर जैसे थे जैसे हो गए। गोसाईं महेन्द्र गिर और राजा इन्दर ने उन तीनों को गले लगाया और बडी आप भगत से अपने पास बैठाया और वही पानी घडा अपने लोगों को देकर वहाँ भेजनाया जहाँ सर मुँडवाते ही ओले पडे थे। राजा इन्दर के लोगों ने जो पानी क छीटे वही ईश्वरोवाच पढ के दिए तो जो मरे थे सत्र उठ-खडे हुए और जो जो अधमुए भाग बचे थे, सब सिमट आए। राजा इन्दर और महेन्द्र गिर कुँवर उदैभान और राजा सूरजभान और रानी लखमीबास को लेकर एक उडन-पटोले पर बैठकर बडी धूम धाम से उनको उनके राज पर निठा कर ब्याह के ठाठ करने लगे। बसेरियन हीरे मोती उन सत्र पर से निझावर हुए। राजा सूरजभान और कुँवर उदैभान और रानी लखमीबास चितचाही असीस पाकर फूली न समाई और अपने सारे राज को कह दिया 'जिबर भौरे क मुँह खेल दो जिस जिम को जो जो उरत सूके बोल दो।'

आज व तिन का सा फौन सा होगा । हमारी आँखों की पुतलियों का जिम से चैन है उम लाइले इकलौते का ब्याह और हम तीनों का डिरना क रूप मे निम्न फिर राज पर बैठना पहिले तो यह चाहिये, जिन जिन की बेटियाँ तिन ब्याहियाँ हों उन सब को उतना करदो जो अपने जिस चाप चोज मे चाहे अपनी गुडियाँ सँवार के उड़ाएँ और जन तक जीती रहे सब की सब हमार यहाँ से खायी पकाया रोधा करें । और सब राज भर की बेटिया सदा मुद्गगिनें रनी रहें और सूहे राते टुट कभी कोई कुट्ट न पहना करें । और मोने रूपे के कवाड गगा जमुनी सब घरो में लग जाँँ और सब कोठो के माथो पर कमर और चन्दन क टीर लगे हा । और जिनन पहाड हमारे दस में हो उनने ही पहाड मोने रूपे क सामने खडे हो जायँँ और डाँगो की चोटियाँ मोतियो की माँग से पिना माँगि ताँग भर जायँँ और फूलो क गहने और बन्धनवार से सब भाट फडाड लट फँँ रहें और इम राज मे लगा उम राज तक अधर में छत सी पँध दो और चप्पा चप्पा कहीं ऐसा न रहे जहाँ भाड भडका धूम धडका न हो जाय । फूल बहुत सारे गट जाय जो नटियाँ जैसे सचमुच फूल की बहनियाँ हें यह समझा जाय । और यह डोल कर दो जिनर से दूल्हा को ब्याहने चड सब लाइली और हीरे और पुगुराज की उमड में इधर और उधर कँवल की टट्टियाँ धन जायँँ और क्यारियाँ सी हो जायँँ जिनक बीचोबीच से हो निकलें और कोई डाँग और पहाड

तली का चढाय उतार ऐसा दिराई न दे जिसकी गोठ पँखुरियों से भरी हुई न हो ।

राजा इन्दर ने कह दिया, 'वह रडियों चुलदुलियाँ जो अपने मद मे उड चलियाँ हैं उन से कह दो—सोलह सिंगार बाल गजमोती पिरो अपने अपने अचरज और अचम्भे व उडन-खटोलो की इस राज से लेकर उस राज तक अधर म छत सी बाँध दो । कुब्ज उस रूप से उड चलो जो उडन-खटोलियो की न्यारियाँ और फुलवारियाँ सैरुडो कोम तक हो जायँ और अधर ही अधर मिरदग तीन जलतरग मुँहचङ्ग धुँधुल तनले घटताल और सैरुडो इस ढर क अनोखे बाजे वजते आँ और उन न्यारियों के बीच मे हीर पुतराज अनवेध मोनियो क भाड और लालपटो की भीडभाड की ममममाहट दिराई इ और इन्हीं लालपटो मे से हथफूल फूलकडियाँ जाडी जुडी कदम गेदा चमली इम ढर छूटने लगें जो देखने वालों की छातियो के बढाड खुल जाँ और पटाखे जो उडल उडल फूटें उनमे से हँसती सुपारी ओर बोलती करौती ढल पडे और जय हम सयको हँसी आवे तो चादिण उस हँसी से मोतियो की लडियाँ कडे जो सय के सय उनको चुन चुन क राजे हो जायँ । डोमनियो के रूप मे सारगियाँ छेड छोड सोहलें गाओ, दोनो हाथ हिला व अँगुलियाँ नचाओ, जो किसी न सुनी हो । वह ताय भाय व चाव दरसाओ, ठुडियाँ गिनगिनावो, नाव नँव तान तान भाय वनावो, कोई छुट कर रह न जावो । ऐसा चाय लायो घरम मे जो जो राजा इन्दर ने अपने मुँह से निकाली था आँख

की मूषक के साथ बही होने लगा। और जो कुछ उन दोना महाराजों ने कह दिया था, सब कुछ उसी रूप से ठीक ठीक हो गया। जिस ब्याह की यह कुछ पैलापट और जमाबट और रचापट ऊपर तले इम जमघटे के साथ होगी, और कुछ पैलावा क्या कुछ होगा, यही ध्यान कर लो।

जब कुँवर उदैमान को वे इस रूप से ब्याहने पड़े और वह वाम्हन जो अँधेरी कोठरी में सुँदा हुआ था उसको भी साथ ले लिया और बहुत से हाथ जोड़े और कहा 'वाम्हन देवता हमारे कहने सुनने पर न जावो, तुम्हारी जो रीत चली हुई आई है वताते चलो'। एक उडन-पटोले पर वह भी रीत बताने साथ हो लिया। राजा इन्दर और महेन्द्रगिर ऐरापत हाथी पर भूलते मालत देखते भालत चले जात थे। राजा सुरजमान दूल्हा व घोड़े के साथ माला जपता हुआ पेदल था। इन्ही में एक सन्नटा हुआ। सब घनरा गए। उम सन्नट में जो वह ६० लाख अतीत ये सब जोगी से बने हुए सब माले मोतियों की लडियों के गले में डाले हुए और गानियाँ उसी टव की बाँधे हुए मिरिगछालों और बघरों पर आ ठहर गए। लोगों के जियों में जितनी उमग छा रही थी वह चौगुनी पचगुनी हो गई। सुखपाल और चडोल और रथों पर जितनी रानियाँ थीं महारानी लछमीदास के पीछे चली आनियाँ थीं। सब को गुदगुदियाँ सी होने लगीं। इसी में भरथगी का सर्ग आया। वहीं जोगी जतियाँ आ पडे हुए। कहीं कहीं गोरख जागे कहीं मुखन्दर नाथ भगे। कहीं मच्छ कच्छ घराह

सन्मुख हुए । कहीं परमुराम, कहीं वामन रूप, कहीं हरनाकुस और नरसिंह, कहीं राम लक्ष्मण सीता समेत आई, कहीं राम और लक्ष्मण का बखेडा सारे का सारा सामने देगाई देने लगा । कहीं कन्हैया जी की जन्मश्रष्टमी होना और वसुदेव का गोकुल ले जाना और उनका बढ चलना, गाँ चरानी और मुरली बजानी और गोपियों से धूम मचानी और राधिका-रहस और कुब्जा का वस कर लेना, कहीं करील की कुँजें, बसीघट, चीरघाट, वृन्दानन, [सेवाकुञ्ज, वरमाने में रहना और कन्हैया से जो जो हुआ था सत्र का मत्र ज्यों का त्यों आँसों में आना और द्वारिका जाना और वहा सोने का घर बनाना इतर विरिज को न [आना और सोलह सौ गोपियों का तलमलाना सामने आ गया । उनमें से उधो का हाथ पकड कर एक गोपी क इस कहन ने सत्रको रुला दिया जो इस ढंग से बोल क उनसे रुँधे हुए जी को खोलने थी—

चोतुका

जत्र छाँडि करील की कुजन को हरि द्वारिका जीउ माँ जाय वसे ।
कुलधृत के धाम बनाये घने महाराजन क महाराज भए ॥
तत्र मोर मुकुट अरु कामरिया कहु औरहि नाते जोड लिए ।
धरे रूप नए किये नेह नए अरु गइयाँ चरायनो भूल गए ॥

कोई क्या कह सके, जितने घाट दोनों राज की नदियों में थे, पड़े चादी के थके से होकर लोगो को हक्का बक्का कर रहे थे ।

निनाडे, भोलिये, वजर, लचके, मोरपट्टी, स्याम सुन्दर, रामसुन्दर और जिननी उब की नाचें थीं सनहरी रूपरी, मजी सजाई कसी कमाए मो सौ लचक खातियाँ आनियाँ जातियाँ ठहरातियाँ फिरतियाँ थीं। उन सभी पर ग्यारसके कचनियाँ, राम-जनियाँ, डोमनियाँ भरी हुई अपने अपने करतवा में नाचती गाती बजाती कूदती फाँडती धूमें मचानियाँ अँगडानियाँ जँभानियाँ उँगुलियाँ नचानियाँ और दुली पडतियाँ थीं। और कोई नाच ऐसी न थी जो सोने रूप के पत्तों से मढी हुई और मगारी से डटी हुड न हो। और घहन सी नाचो पर हिलोले भी उमी टप क थ। उन पर गायनें बैठी भूलती हुई मोहनी, बदारा, बागेसरी, फन्हडो में गा रही थीं। दल गाल ऐसे नयाडों क मत्र मीलों में छा रह य।

इस धूम धाम क साथ कुँवर उदैमान सेहरा पाँव जन दुतहन क घर तक आ पहुँचा आर जो रीत उनक घराने में चली आई थी होने लगिया।

उम घडी मदनवान को रानी केनकी क वादले का जूडा और भीनाभीनापन और अँरुहियों का लजाना और पिसरा बिखरा जाना भला लग गया तो रानी पतकी की घाम सूँघने लगी और अपनी आँखों को चेमा कर लिया जैसे कोई अँघने लगता है। सिरे से लगी पाँव तक धारी फेरी होके तलवे सुहलाने लगी। तब रानी केतकी मट एक धीमी सी सिसकी लचके क साथ ले उठी। मदनवान जोली 'मेरे हाथ क ठोके से वही पाँव

का छाला दुग्न गया होगा जो हिरनों को ढूँढने में पड़ गया था।' इसी दुग्न की चुटकी से रानी केतकी ने मम्मोस का कहा 'काँटा अडा तो अडा, छाला पडा तो पडा, पर निगोली तू क्यों मेरी पनडाला हुई'।

दूल्हा उजैभान सिंघामन पर जेठा और इधर उधर राजा इन्दर और जोगी महेन्दर गिर जम गए और दूल्हा का वाप अपने बेटे के पीछे माला लिए कुछ गुनगुनाने लगा। और नाच लगा होन और अधर में जो उडनगटोले राजा इन्दर के असाडे के सत्र उमी रूप में छत्र गाँधे हुए थिरका किए दोनों महारानियाँ समधिन वन के आपस में मिलियाँ चनियाँ और देखने दाखने को कोठों पर चन्दन के किवाडों के आड तरो था वेठियो। सगाँग सगीत भँडताल रहस हँसी होने लगी। जितनी राग रागनियाँ थीं—ईमन कल्यान, सुद्ध कल्यान, किम्कोटी, कान्हडा, रम्माच, सोहनी, परज, निहाग, सोरठ, कालगजा, भैरवी, पटललित, भैरो रूप पकडे हुए सचमुच के जैसे गाने वाते होते हैं उसी रूप में अपने अपने समय पर गाने लग और गाने लगियाँ। उस नाच का जो ताव भाव रचावट के साथ हो, किसका मुँह जो कह सत्र। जितने महाराजा जगत परकाश के सुरा चैन के घर थे—माधो विलास, रसगाम, कृष्णानिवास, मच्छीभव, चन्द्रभजन-सयक सत्र लपे से लपेटे और सच्चे मोतियो की भालरें अपने अपने गाठ में समेटे हुए एक भेष के साथ भूम रहे थे।

बीचो बीच उन सत्र घरों के एक आगसी धाम बना था

जिमकी छत और किवाड़ और आगन में आरसी छुट कहीं लफड़ी टूट पत्थर की पुट एक उँगली के पोर धरानर न लगी थी। चादनी का जोड़ा पहन जन रात धड़ी एक रह गई थी तन रानी पत्थरी सी दूल्हन को उसी आरसीभरम में बैठाकर दूल्हा को बुला भेजा। सुँवर उदैमान कन्हैया सा जना हुआ सिर पर मुकुट धरे सेहरा बाधे उमी तडावे और जमघट के साथ चाद मा मुसडा लिए जा पहुँचा, जिम जिन ठन से बाम्हन और पडित कहते गये और जो जो महाराजों में रीते होती चली आई थीं उसी डौल से उसी रूप से भँवरी गठ जोड़ा हो लिया।

यह उडनपटोलैवालिया जो अधर में छत सी बाधे हुए धिरक रही थीं, भर भर कोलियाँ और मूठियाँ हीरे और मोतियाँ से निझार करने के लिये उतर आइयाँ और उडनपटोले अधर में ज्यों के त्यों छन बाधे हुए सडे रहे। और वह दूल्हा दूल्हन पर से सात सात फेरे वारी फरे होनमें पिस गइया। सभों को एक चुपनी सी लग गई। राजा इन्दर ने दूल्हन की मुँह दिखाई में एक हीरे का एक डाल छपररस्ट और पक पडी पुरराज की दो और एक पारिजात का पौधा जिसमें जो फल चाहो सो मिले दूल्हा दूल्हन के सामने लगा दिया। और एक कामधेनु गाय की पठिया धडिया भी उसने पीछे बाध दी और इकीस लौडिया उन्हीं उडनपटोले-वालियों में मे चुन के अच्छी से अच्छी सुधरी से सुधरी गाती बजातिया सीतिया पिरोतिया और सुधर से सुधर सौपी और उन्हें कह दिया 'रानीपत्थरी छुट उनरे दूल्हा से कुछ बात चीत न ररना नहीं तो सन की सब पत्थर की मूरतें हो जावोगी और

अपना किया पायेगी'। और गोसाईं महन्दर गिर न वाचन तोले पाठ रत्ती जो उसकी इक्कीम चुटकी आगे रखी और वही "यह भी एक खेल है जब चाहिए बहुत सा ताँबा गला के एक इतनी सी चुटकी छोड़ दीजे कचन हो जायगा" और जोगीजी ने सभो से यह कह दिया 'जो लोग उनके व्याह में जागे हें उनक घरो में चालीस दिन चालीस रात सोने की नदियो क रूप में मनी परसे। जब तक जिण किसी बात की फिर न तरमे।' नो लाग्य निन्नानत्र गाँ सोने रूप मिंगौरियो की जडाऊ गहना पहने हुए घु घरु छमछमानियाँ महनो को दान हुई। और सात धरस का पैसा सारे राज को छोड़ लिया गया। वाइस सै हाथी और छनीस सै ऊँट रुपया के तोडे लाद हुए लुटा दिया। कोई उस भीडभाड म दोनो राज का रहने वाला ऐमा न रहा जिमको घोडा जोडा रुपयो का तोडा जडाऊ रुपडो के जोडे न मिले हो। और मदनबान छुट दूल्हा दूल्हन पास किमी का हियाव न था जो पिन बुलाए चली जाय पिन बुलाए टाडी आए तो वही आए और हँसाय तो वही हँसाए। रानी नेनकी क छेडने के लिए उनके कुँवर उदैमान को कुँवर क्योडाजी कदम पुकारती थी और ऐसी बातो को सौ सौ रूप से संभारती थी।

सदलमिश्र (समय लगभग १८२४-१९०५)

सदलमिश्र आरे के रहने वाले शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे । इनके एक पूर्वज शुक्रदेव मिश्र आरा व एक ग्राम में आकर बसे थे । किन्तु अपने सजातीयों के अत्याचार के कारण उन्हें वह ग्राम छोड़ कर भदवर ग्राममें जाना पडा ।

उस ग्राम में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी । प० शुक्रदेव के पुत्र थे लक्ष्मण मिश्र । लक्ष्मण के पुत्र नदमणि के ज्येष्ठ पुत्र सदलमिश्र थे । प० सदल मिश्र सस्कृत के अच्छे पंडित थे । इसी विद्वत्ता के कारण इन्हें फोर्ट विलियम कालेज में नियुक्त किया गया और वहा के अध्यक्ष विलकिस्ट साहेब के अच्छे कृपापात्र बन गये । उन्हीं के आदेश से इन्होंने 'नासिनेतोपारप्यान' की रचना की है ।

प० सदलमिश्र प० लल्लू लाल के समकालीन थे और उन्हींके साथ फोर्ट विलियम कालेज में थे । तथापि इनकी भाषा और उनकी भाषा में बहुत अन्तर है । लल्लू लाल की भाषा पर ब्रज-भाषा का काफी पुट चढी है और अस्थिर और अपरिमार्जित है । उन्होंने पद्यों की तरह तुरु मिलाने की ओर ध्यान अधिक दिया है । पर मिश्र जी की भाषा बोलचाल में आने वाली रङ्गीबोली है, यद्यपि कहीं कहीं उसमें ब्रज और पूरबी हिन्दी की झलक आ जाती है । भाषा के लिहाज से इनका स्थान मु० ईशाअल्ला रा के बाद और लल्लू लाल से पूर्व है ।

नासिनेतोपारूपान

तुरन्त द्वारपालों ने रघु से जा कहा कि महाराज ! एक कोई श्रेष्ठि महानजम्बी यादर आय गये हैं ।

मुनन ही च मन्त्रिया को माव ले दीड़ हुए आय । आवन ही मुनि जी च चरगा पर गिर पड और हाय पकड भीतर ले जा अपने मिहामन पर बैठाय कुशल तेम पूछ गङ्गाजल से श्रेष्ठि पे पाँच पगर चरगोदक लिए । आर बैमा कुत्र चाहिए, बैमा आन्तर मान कर हाय जोड कश्ने लग कि महाराज ! बडा अनुमह किया जो आव दर्जन दिया । अर हमारी मध किया वो जन्म सुफल हुआ । चाहिए कि आज से भर राज म सब भला टिन हुवा करेगा, क्योंकि जहाँ तुम से श्रेष्ठिया की दया है, वहाँ मदा ही आनन्द विदार होना है । अर कहिए किस कारण से यहाँ आगमन हुआ, मौ इम नाम को सुनाइए ।

तेमो नृप की मीठी मीठी धानों से हर्षित हो चार बार आसीम कह उदालक योने कि धन्य है तुम्हारी माता वो पिता कि जिन को तुममा धर्मात्मा पुत्र हुआ । और स्वर्गलोक में दवनो की कन्या दिन रात घर घर तुम्हारा गुण गाती हैं । तुम्हें बडा दानी जान कन्या याचने को मैं आया हूँ । धर्मावतार । वेद की विधि से हमको उसे दीजिए तो लाख गोदान किए का पावोगे ।

बात सुनके नरेश ने कहा कि स्वामी ! अज्ञ बरु हामी

घोडा द्रव्य जितना चाहिए सो हमसे सत्र लीजिए, पर कन्या तो मेरे घर में नहीं जो आपको दूँ।

मुनि बोले कि सत्य, वह पतिव्रता कन्या विना ब्याही हुई तुम्हारे मन्दिर में नहीं, पर कहीं होगी। कुल बढ़ाने के लिए मुझ को दीजिए, कोटिन्ह अश्वमेव यज्ञ का पुण्य सहज में होगा।

ऋषि की आश्चर्य्य बात सुन शोक से आकुल हो सजुचा कर राजा कहन लगे कि महाराज ! प्राण से भी अधिक प्यारी एक पुत्री हमको थी सही, पर कुछ दोष मुनि मारे क्रोध से उस घर से मैंन निकाल दिया। मो आपको योग्य नहीं। और इधर जाने कि अत्र जीवती है कि मर गई।

तब उद्दालक मुनि पिछला समाचार भूपति को सुना दिया।

तब व मुनकर बार बार पड़िना पड़िता रो रो कहन लगे कि हाय ! हाय ! यह दवचरित्र मैंने कुछ नहीं जाना। हम सा पापी अधर्मी दूसरा कीई नहीं जो विना अपराध बेटी को बनवास दिया।

एसे कहत हुए वहाँ से तुरन्त हर्षित हो उठे। जो भीतर जा मुनि न जो आश्चर्य्य बात कही थी, सो पहिले रानी को सत्र सुनाई। वह भी मोह से व्याकुल हो पुकार पुकार रोने लगी वो गिडगिडा कहन कि महाराज ! जो यह सत्य है तो अत्र ही लोग भेज लडके समेत भट उसको बुला ही लीजिए, क्योंकि अत्र मारे शोक के मरी छाती फटती है। कत्र मैं सुन्दर बालक सहित चन्द्रवती के मुँह, जि जो बन के रहन से भोर के चन्द्रमा सा मलीन हुआ होगा, देखोगी। देखो यह कर्म का खल, कहाँ इहाँ

नाना भौंनि भोग रिनास मे वो फूलन्त के रित्रोने पर मे सुख मे दिन रात जिमक वीतते थे, सो अब जगन मे रुन्ट मूल खा काटे कुश पर सो कर म्यारो के चहुदिशि डरावन शब्द सुनि कैसे विपति को काटती होगी ।

राजा बोले कि माता पिता से प्राणी का एक जन्म ही तो होता है । और सुख दुःख जो पूछो तो जय जैसा बड़ा तब तैमा, क्या राजा प्रजा, मर ही बड़े छोटे को होता है ।

इतने में जहाँ से सखी महली और जात भाइयो की म्त्री सब दौड़ी हुई आई, समाचार सुनि बहुत जुड़ाई, मगन हो हो नाचने गाने बजाने लगीं, वो अपने अपने देह मे गहना उतार उतार सेरकों को ढने लगी और अगणित रुपैया पात्र कन्ध राजा रानी न प्राह्मण को बोला बोला दान दिया । आनन्द बधावा वाचने लगा । हर्षित हो नरेश न वहाँ से मभा मे जा ऋषि से कहा कि महाप्रभु ! आपने मेरा बड़ा फलक मिटाया है । इस आनन्द का कुछ पारावार नहीं । अब निश्चिन्त हो इहाँ विराजित, कन्या मैंगा आपको मैं दूँगा ।

ऐसे कह प्रसृत पदार्थ भोजन करा अनि आदर से मुनि को टिकाया, वो तुरन्त सेरकों के सहित पालकी भेज नाती समेत बेटी को जन से मँगा लिया । गने लगा सब रनिगस भेंट किया । बालक गोदी में तो मतारी लडकी को घर मे बैठा रो रो बन की बान पूछने लगी । भाई गोनिया हित भीत नगर के लोग दरने को प्राए । भीतर बाहर नृप न मदिदर में मारे भीड के उथल पथल हो गया । तब भूप ने पण्डितो को बुला

शास्त्र के ज्ञाता, धर्म अधर्म के विचार और तेज में दग्ने हैं कि यम न ममान ही हो। और प्राणियों के मरुत कर्म के जाननिहार प्राण प्राण में तुमको प्रणाम करता हूँ। पुण्य पाप के कारण से सुग दुग के जो जो स्थान इस नगर में हैं सो दग्ने की मरी इच्छा है। कृपानिधान ! दया करके हमारे मनोरथ को पुराणो।

वैशम्पायन कहत हैं, इस प्रकार म विनती कि पर चित्रगुप्त की आज्ञा ले दूतों ने नासिपत को तेजा म्भर्ग नरक, जहाँ पुण्य पाप के फल प्राप्त हैं, दिया सुना प्रसन्न कर फिर चित्रगुप्त को कहते हुए धर्मराज के पास ले आय गडा कर लिया।

महातजस्वी के समर्थ जान उनके आवत ही के उठ सके भए थोर आसन के बैठाय प्रीति कर पूछन लग कि कहो नामिनत ऋषि ! चित्रगुप्त समेत सारे पुर के नाना भाँति के लोग जो अपने अपने कर्म के फल भोगते हैं, दर आण ? श्रद्धा पूरी भई ?

वे बोले महाराज ! तुम्हारे प्रसाद से मन स्थान से मैं ही आया। अब माता पिता हमारे शोक से कल्पन हाग, आज्ञा करो तो चाका दर्शन करूँ।

तब इतना वचन सुनि धर्मराज निपट हर्षित भए, वे यह तर द तनको अपने यहाँ से लिया लिया कि आज से तुम अपने योग के बल से सब दुःख से छूट आर मृत्यु को जीत युवा स्वरूप हो मदा आनन्दविहार में मगन रहो। और जो तुम्हारे कुल में होगा सो हमारा कनही न सुँह देवगा।

इस प्रकार से यह वर पाया नामिकत मुनि मन के वेग समाप्त से चले, सो पल भर में जन्म माना पिता मारे मोह से दुबरा कर मग्न योग्य हो रहे थे, वहा अचानक जा पहुँचे, वो जान ही दोना की प्रवृत्तिणा की, वो चरण छू प्रणाम कर सन्मुख जा बैठ ।

[पत्नी] महित उदालक श्रुति पुत्र को बुधान से दत्त वहुत हर्षित भये वो तुरन्त गोदी में बैठे अनि आनन्द से रो रो वार वार मुँह चूमने लगे और कहने लगे कि नासिकत ! आज हमारा जन्म साध्य हुआ । हम समान क्रीडी दुराचारी पापी सत्तर में फाँस होगा जो पिता अपराध शाप द तुमको सकट में टाला । धन्य हो पुत्र, कि इसी दह से यमकी पुरी को देख ज्या व ल्यो फिर चले आए । जग में एक से एक सिद्ध हुए और हैं, पर मैं जानता हूँ कि तुम्हारे गुण वो तेज को कोई दर्शाश भी नहीं पा सकता है । कहो कैसे धर्मराज का लोक व नगर है । वैसा यम का रूप, किस प्रकार की बात कि जिससे इनना शीघ्र गए वो आए ? क्या खाने पीने को पाया ? किस रीति से जान चोत की ? और जो कुद्र अचरन देगा मुना हो सो हमसे कहो कि सन्देह मिटे, वो जो, करने को होय नो मैं कहूँ ।

नासिकेत बोले पिता ! आपका पुण्य प्रनाप से यम के मन्दिर हम गए । सत्र व सहारकर निहार दूतसहित यम-राज, पुण्य पाप के लिखने वाले चित्रगुप्त और भाँति भाँति के देवता अन्नगणित मैंने देख । बडी स्तुति से रिक्ता कर यम से यह

वर पाया कि इसी वह से जाओ, अब तुम्हारा जन्म मरण न होवेगा और युग वयस सब दिन सुख में भरे पुरे रहोगे ।

त्रैशम्पायन कहते हैं, इतने में नासिनेत धर्मराज क पुर से हो आया, यह मुनि ऋषि लोग बहुत चकित हो अपने अपने आश्रम में जिस भाँति से तप करते थे, उसी प्रकार से यमलोक के समाचार पूछने के लिए चल खड़े भए । कितने एक तो नीचे माथे ऊपर पाव किए और कितने एक ही चरण से खड़े, कोई दोनों, कोई एक ही हाथ उठाए, किसी को देखो तो मोन ही बन किए, कोई मूंगे पत्ते ही खा, कोई निराहारी हुए, बहुतरे सत्तार सागर पार होने को योग ही में मगन दिगम्बर वेप बनाए, कठिन से कठिन तपस्या में मन लगाए, जहाँ पिता के समीप नासिनेत बैठे थे वहाँ आन पहुँचे ।

देखने ही वे हर्षित हो उठ खड़े भए वो प्रणाम कर मिल भेट, कुशल चैम पूछ, आसन दे एक एक को अलग अलग बैठा, पाँव धुला, आचमन करा, अक्षत चन्दन फूल ले सगों को पूजने लगे ।

तब समय जान ऋषि लोग बोल उठे कि नासिनेत ! हम तुममें अति प्रमत्त भए । शिष्टाचार तो जैसा कुछ चाहिये वैसा हो चुका वो होता रहगा, अब यमलोक की बात सुनावो । कैसी वह पुरी है कि जहाँ सदा आप धर्मराज विराजते रहते हैं ? कैसे यम के दूत हैं ? क्या वहाँ की रीति रहन ज्ञान तपस्या वो कैसी वहाँ चैतरणी नदी है ? और वहाँ जो करते सो वहाँ भोगते हैं ? किम करम के फेर से यम के कोप में जा पडते

हैं ? कैसा उनका दृष्ट व कैसे चित्रगुप्त हैं जो प्राणियों के धर्म अथर्व लिख धर्मराज को ज्ञाते हैं ? पाम में उनके कौन कौन मुनि लोग रहते हैं ? मो सब कृपा कर कहो कि जिससे अति मनुष्ट हो तुम्हारे गुण को गाँवें ।

उनकी इतनी घान मुनि बीच में बैठ नासिपेन मुनि कहने लगे कि जिनने तुम माधु मन्त्र हो मो अब माप्रमान हो सुनो । ऐसी आरच्य यह कथा है कि जिसक अरण से रोमाँच होत है ।



राजा शिवप्रसाद (सन् १८८०—सन् १८६५)

राजा शिवप्रसाद का सन्तान रणथम्भारगढ़ के राजपूतों से है। आप ५ पूंज निली में जोहरी का व्यवसाय करते थे। आपके पितामह काशी में बसे थे। वहीं पर राजा साहिब का जन्म माघ सुदी द्वितीया, मवा १८८० को हुआ था। आपके पिता का नाम बानू गोपीचन्द्र था। आप उर्दू, फारसी, हिन्दी और मस्कृत जानते थे। पीछे आपने अमेज़ी में भी अच्छी योग्यता पा ली थी।

शिक्षा प्राप्त करने पर आप भरतपुर दरबार में जाकर हुए और वहाँ ५ वकील होकर दरबार की बड़ी सेवा की। सन् १८४५ ५ अमेज़ी और सिम्लों के युद्ध में आपने अमेज़ी राज्य की सहायता की थी।

सन् १६१३ में आप शिक्षाविभाग ५ इसपत्र नियत हो गये। इस पद पर रह कर आपने हिन्दी की अच्छी सेवा की। आपने बाल-पाठ्य पुस्तकें कुछ कुछ लिखीं और कुछ विद्वानों से लिखाई।

आप ही के प्रभाव से उर्दूवाना ५ विरोध होते भी हिन्दी को शिक्षा-विभाग में स्थान मिला। हिन्दी में मूल शिक्षा की पाठ्य पुस्तकों का अभाव था। उसको दूर करने के लिये आपने कोई ३५ पुस्तकें लिखीं।

श्रीहरिश्चन्द्र जी आप को अपना विद्यागुरु कहते थे। इन सेवाओं के उपलक्ष्य में आपको सन् १८७२ में सी० एस० आई० की और सन् १८८७ में 'राजा' की उपाधि दी गई। आपका देहान्त १३ मई, सन् १८६५ में हुआ।

राजा भोज का सपना

वह कौनसा मनुष्य है जिसने महाप्रतापी महाराजा भोज का नाम न सुना हो। उसकी मदिमा और कीर्ति तो सारे जगत् में व्याप रही है। बड़े बड़े महीपाल उसका नाम सुनते ही सँप उठने और बड़े बड़े भूपति उसके पाँव पर अपना सिर नवान, मेना उसकी ममुद्र की तरंगों का नमूना और खजाना नमना सोने चाँदी और रत्नों की खान से भी दना। उसके दान न राजा कर्ण को लोगों के जी से भुलाया और उसके न्याय न विक्रम को भी लजाया। कोई उसके राज्य भर में भूखा न होना और न कोई उगाडा रहने पाता। जो सत्तू माँगने आता उस मोतीचूर मिलता और राजी चाहता उसे मलमल दी जाती। जैसे का जाडू लोगों को अशर्कियाँ बाँटता और मेह की तरह भिखारियों पर मोती बरमाना। एक एक श्लोक क लिये लाखों देता और शत्रुओं को पट्टरस भोजन कराके तत्र आप खाने को बैठना, तीर्थ-यात्रा मान, पा और शत्रु-उपनास में सदा तत्पर रहता। उसने बड़े बड़े चाद्राध्या क्रिये थे और बड़े बड़े जगल पहाड ध्यान डाने ।

एक दिन शरत् ऋतुमें सन्ध्या क समय फुलवाटी क नीच स्वच्छ पानी के कुण्ड क तीर जिम्में कुमुद और कमलों क नीच जलपनी झिल्लें कर रहे थे, रत्नचटित सिंहासन पर कोमल शिष्य क सहारे स्वन्यचित्त बैठा हुआ वह महलों की सुनहरी कलमियाँ लगाई हुई मगमरमर की गुमजियों के पीछे से उदय होता हुआ पूर्णिमा का चन्द्रमा देख रहा था और निर्जन एकान्त होने के कारण मन ही मन में सोचता था कि श्रद्धो ! मैंने अपने

चोपाई

इतना दिन कहो कहीं लगाए । तरे कारण बहु दुख पाए ॥
 अग्निहोत्र वह यज्ञ हमारा । तुम निन गया अकारथ सारा ॥
 पुत्र करत हं सुख पाने को, नहीं तो निपुत्र होना अच्छा ।
 अत्र ही में पिता माता को दुख देने लगा, न जाने आगे क्या
 करेगा । देखो अग्निहोत्र से ब्रह्मा आदि देवना और पितर सब
 सन्तुष्ट होते हैं, सो हमसे बुद्ध हो सका नहीं ।

पिता की बात सुनि नामिनेत बोले कि अग्निहोत्र कर्म केवल
 ममार के पन्थन के लिये है, मेरे जानने में तो योग समान कोई
 दूसरी मिथा भुक्तिदायक नहीं, कि जिसको ब्रह्मा आदि देवता सब
 भी मानते रहते हैं ।

उद्दालक नेले वेद पढि अग्निहोत्र करके करोडन्ह बरस
 सुरपुर मे नाना भोगनिलास करत हैं । योग से कहो क्या होना है ?

नासिनेत न कहा वेद पढि अग्निहोत्र करने से बार बार ससार
 में आते जाते हैं । योग साधने से इस दुह से मुक्ति हो आनन्द
 विहार करत हैं ।

यह समाचार वैशम्पायन मुनि राजा जनमेजय से कहते हैं कि
 इस प्रकार पुत्र को बरा बर उत्तरदायक जात उद्दालक ऋषि ने शाप
 दिया कि जान, अब ही तुम यमलोक मियारो । अब इहाँ तुम्हारे
 रहने से हम प्रसन्न नहीं । पहिले तो ब डरावने शाप से लगे काँप-
 न, फिर धीरज कर योग के बल से तुरन्त यम के निकट चल
 मंडे भये ।

सुनते ही आस पाम के मुनि मथ हाय हाय करते दौड़ आए । मिर में जटा, अङ्ग में वभूत, पंने के दिल्कर का लगोट नाँधे, मृग का चर्म थोड़े, छोटा सा लडका जान, मीठी मीठी बात कहते टप कर बहुत पढ़ाने लगे ।

पाँच पकड़ कर मतारी रोने कल्पन लगी । तब उद्दालक मुनि मोह से छुट्का कर कहन लगे क्यों पुत्र ! हमको विसरण चले जाते हो । हम समान कुटिल कठोर निर्भयी दूसरा कौन जग में होगा जो तुमको शाप दे । क्योंकर पुन उम पुरी में जावोग कि जहाँ राजा कहिये तो यम है, वो महाभयावनी वैतरनी नदी बहती है, बाट में कितने एक दूर तक मदा अग्नि ऐसी बरमनी रहती है कि जहाँ पापी सत्र जा जा जलते हैं ।

नासिकत ने कहा पिता ! कुछ खेद मत करो, आपने प्रताप से यमराज को देख शीघ्र मैं चला आऊँगा । तुम से पिता की बात जो सदा सत्य होती आई है, मो र्म झुटाने नहीं सकता हूँ । देखिए, सत्य ही से चन्द्रमा सूर्य नित्य भ्रमते हैं । मत्य ही स्वर्ग में है, नहीं तो बिना उसके नरक भोग होता है । इमलिये यम की पुरी को दरूँगा । पिता ! मन को आतुल मत करो । इतना कह माना सहित पिता वो ऋषि को प्रणाम कर भट्ट वहाँ से अन्तर्धान हो शिव का मन्त्र जपते वो ब्रह्मा का ध्यान करत चले, और बडे सिद्ध व इम कारण पल भर में यम की वह सभा में, कि जहाँ अत्री आदि अनेक ऋषि लोग अपनी अपनी पोथी खोल न्याय विचार यमराज से कहते थे, जा पहुँचे ।

चौपाई

शिव स्वरूप अति सुन्दर बानरु । निपट छोटा दम्बन मुग्धायरु ॥
जटा मुट्ट वो भम्म लगाए । जानहि सकल समा [मन] भाए ॥
नय सिर नवाय प्रणाम करि हाथ जोर लगे धर्मराज का
स्तुति करने ।

वैशम्पायन मुनि राजा जामेजय ने कहत हूँ, सूर्य्य ममान
तेजस्वी नमिनेत मुनि को, भिनरे जाने से समा शोभने लगी,
देखने ही धर्मराज हर्षित हो तुरन्त उठ खड़े भए । आदर मानकर
निम्न अपने आसन पर श्रुति को बैठाया वो प्यार से ममाचार
पूछन लगे ।

चौपाई

बालद्विपन में उड़ी सियाई । कइो मुनीश कैस यह पाई ।
धन्य पिता जिनर तुम भए । तुम्हें देख पातक सब गए ॥
कारण कौन यहाँ तुम आए । चार चार भरे गुण गए ॥
अमृत वाणी बहुत सुनाई । जो कहत मोहावनि अति सुखदाई ॥

इतनी यम की बातें सुन नासिकेत न कहा दीनदयाल । अपनी
भूल कहीं तक मैं थापको सुनाऊँ । जब कुमति आ घेरती है
तब कैसेहू कोई ज्ञानी होय, ज्ञान ठिकाने में नहीं रहता । एक
तो पहिले आज्ञा मे चूक ही घे, फिर ज्ञान की चर्चा में ठिठाई
कर पिता को बराबर उत्तर दिया । इस अपराध से भट्ट उनक
मुख से यह बात निकल गई कि जा, थब ही यमपुरी को देख,
तू हमारे साथ रहने योग्य नहीं । सो महाराज ! पिता का धवन

सत्य करने के लिए तुम्हारे समीप आया हूँ। जैसी कुछ आता होए सो मैं करूँ।

हैंस ४ यम बोले कि महाप्रभु! तुम समान मुनि को, कि जो अत्र ही ऐसा योग में मगन हो समार की माया मोह त्याग जो चाहे सो करे, जहाँ इच्छा आवे, तहाँ चला जाय, देख कर अति आनन्द हमको होता है। कहो क्या मन म है सो वर मुझमें माँगो।

नासिकेत बोले महाराज! ऐसी दया करते हो तो चित्रगुप्त समेत अपनी सारी पुरी वो धर्मात्मा लोग जहाँ पुण्य का अच्छा फल वो पापी जन नरक भोगते हैं, सो मन स्थान दियारो। यही मरे मन की लालसा है।

तुरन्त उनने दूतों को बुलाफ कहा कि यह यद्यपि बड़े सत्यवादी मर्त्यलोक से पिता के शाप पाय यहाँ आए हैं। जाव, सगरे पुर का दर्शन इन्हे करा लावो, कि जिसमें अपना मनोरथ पूरण कर हर्षित हो।

प्रभु की इतनी आज्ञा सुनि दून सत्र बोहो उनको चित्रगुप्त व पास ले गए और कहा कि धर्मावतार। यमराज ने हमको भेजा है। वाप का बचन रखने के लिए ये महापुरुष यहाँ आए जो कुछ कहते हैं साध्यान होकर सुनिए।

किंकरों की यह बात सुनि चित्रगुप्त ने मुनि से पूछा कि महाराज! तुम्हारे दर्शन से निपट हम सन्तुष्ट भए, कहो क्या अभिलाष है, सो मैं पूरण करूँ।

नासिकेत बोले, ईश्वर ने अति उत्तम तुमको बनाया है। म०

शाम्ब न ज्ञाता, धर्म अधर्म के विचार और तेज में दरपत हैं कि यम न ममान ही हो। और प्राणियों के मरुत कर्म के जाननिहाय नार धार में तुमको प्रयाग करता हूँ। पुण्य पाप क कारण से मुख दुख के जो जो स्थान इस नगर में हैं सो देखने की मेरी इच्छा है। कृपानिधान ! दया करके हमारे मनोरथ को पुराओ।

वैशम्पायन कहत हैं, इस प्रकार से त्रिनती क्रिण पर चित्रगुप्त की आज्ञा ले दूतों ने नासिकत को लौजा स्वर्ग नरक, जहाँ पुण्य पाप के फल पावते हैं, दिग्ग सुना प्रमन्न कर फिर चित्रगुप्त को रहते हुए धर्मराज क पास ले आय खडा कर दिया।

महानजस्वी व समने जान उनके आगत ही व उठ खडे भए और आसन द बेठाय प्रीति कर पूछने लगे कि कहो नासिकत ऋषि ! चित्रगुप्त समत सारे पुर वो नाना भाँति के लोग जो अपने अपने कर्म का फल भोगते हैं, दरु आप ? अद्वा पूरी नई ?

व बोले महाराज ! तुम्हार प्रसाद से मत्र स्थान से मैं हाँ आया। अत्र माता पिता हमारे शोक से कलपत होग, आज्ञा करो तो जाका दर्शन करूँ।

तय इतना वचन सुनि धर्मराज निपट हर्षित भए, वो यह वर द बनको अपने यहाँ से त्रिा क्रिया कि आज से तुम अपने योग क बल से सब दु ख से छूट और मृत्यु को जीत युवा स्वरूप हो सदा आनन्दविहार में मगन रहो। और जो तुम्हारे कुल में होगा सो इमारा कर्हीं न मँद देखगा।

इस प्रकार से यह वर पाया नासिरत गुनि मन व वग समाग से चने, मो पल भर में जड़ा माना पिता मारे माह स दुवरा कर मरने योग्य हो रहे व, पदा अतानक जा पहुँच, वो जाने ही दोनों को प्रदक्षिणा की, वो चरण द्रु प्रणाम कर सन्मुख जा बैठ ।

[पत्नी] सहित उदालक ऋषि पुत्र को कुशल से दत्त गृह्त हर्षित भये वो तुरन्त गोदी में बैठा अनि आनन्द से रो रो वाग धार मुँद चूमने लगे और कहने लगे कि नासिरत ! आज हमारा जन्म सारथ हुआ । हम समान क्रोधी दुराचारी पापी मसार मे फँस होगा जो त्रिना अपराध शाप दे तुमको सकृद म डाला । धन्य हो पुत्र, कि इसी दह से यमकी पुरी को देत ज्यो क त्यो फिर चले आए । जग में एक से एक सिद्ध हुए और हँ, पर मैं जानना हूँ कि तुम्हारे गुण वो तज को कोई दर्शाश भी नहीं पा सकता है । कहो कैसे धर्मराज का लोक व नगर है । ऐसा यम का रूप, किस प्रकार की वाट कि जिससे इतना शीघ्र गए वो आए ? क्या खाने पीने को पाया ? किस रीति से रात चोत की ? और जो कुछ अचरज दत्ता सुना हो सो हमसे कहो कि सन्देह मिटे, वो जो, करने को होय सो मैं कहूँ ।

नासिकेत बोले पिता ! आपक पुण्य प्रताप से यम के मन्दिर हम गए । सत्र के सहारकर त्रिहास दूतसहित यम-राज, पुण्य पाप के लिखने वाले चित्रगुप्त और भाँति भाँति के अनगणित मैंने देखे । बड़ी स्तुति मे रिक्ता कर यम से यह

वर पाया कि इसी तरह से जाओ, अब तुम्हारा जन्म मरण न होगा और युवा वयम मन दिन सुख में भरे पुरे रहोगे ।

शैशम्पायन कहते हैं, इतने में नासिनेत धर्मराज के पुर से हो आया, यह सुनि खपि लोग बहुत चकित हो अपने अपने आश्रम में निज भाँति से तप करत थ, उसी प्रकार से यमलोक के ममाचार पढ़ने के लिए चल सडे भए । कितने एक तो नीचे माथ ऊपर पाँव किए आर कितन एक ही चरण से सडे, कोई दोनों, कोई एक हाँ हाथ उठाए, किसी को दसो तो मौन ही व्रत किए, कोई मृत्यु पत्ते ही खा, कोई निराहारी हुए, बहुतरे ससार सागर पार होने को योग ही में मगन दिगम्बर वेप बनाए, कठिन से कठिन तपस्या म मन लगाए, जहाँ पिता के समीप नासिकत बैठे थ वहाँ आन पहुँचे ।

दग्धन ही व हपित हो उठ सडे भए वो प्रणाम कर मिल भेट, कुशल ज्ञेय पूछ, आसन द एक एक को अलग अलग बैठा, पाँव धुला, आचमन करा, अक्षत चन्दन फूल ले सर्वों को पूजने लग ।

तब समय जान खपि लोग बोल उठे कि नासिनेत ! हम तुमसे अति प्रमत्त भए । शिष्टाचार तो जैसा कुछ चाहिये वैसा हो चुका वो होता रहगा, अब यमलोक की बात सुनावो । कैसी यह पुरी है कि जहाँ सदा आप धर्मराज विराजते रहते हैं ? कैसे यम व दूत हैं ? क्या वहाँ की रीति रहन ज्ञान तपस्या वो कैसी वहाँ वैतरणी नदी है ? और यहाँ जो करत सो वहाँ कैसे मोगने हैं ? किस करम के फेर से गए थे वहाँ ?

है ? कैसा उनका दड व जैसे चित्रगुप्त है जो प्राणियों के धर्म
अधर्म लिख धर्मराज को जनाने है ? पास में उनके कौन कौन
मुनि लोग रहते हैं ? मो सर कृपा कर कहो कि जिससे श्रुति सतुष्ट
हो तुम्हारे गुण को गाँवें ।

उनकी इननी बात सुनि बीच में बैठ नासियत मुनि कहने
लगे कि जिनने तुम माधु मन्त हो मो श्रम मानवान हो सुनो ।
पेमी आश्चर्य यह कथा है कि जिसके श्रवण से रोमाँच
होत है ।



राजा भोज का सपना

वह कौनसा मनुष्य है जिसने महाप्रतापी महाराजा भोज का नाम न सुना हो। उसकी मर्मा और कीर्ति तो सारे जगत् में व्याप रही है। बड़े बड़े महीपाल उसका नाम सुनते ही कांप उठते और बड़े बड़े भूपति उमर पाँव पर अपना सिर नयाने, मेना उसकी समुद्र की तरंगा का नमूना और म्रजाना उसका मोने चाँगी और रत्नों की ग्यान में भी दूना। उसका दान न राजा कर्ण को लोगों के जी से भुलाया और उसने न्याय न विक्रम को भी लजाया। कोई उसका राज्य भर में भूया न होना और न कोई उगाडा रहने पाता। जो मत्तू माँगने आता उसे मोतीचूर मिलता और गजी चाहता उसे मलमल ली जाती। जैसे की जगह लोगों को अशर्कियाँ बाँटना और मेड की तरह भित्कारियों पर मोती परसाना। एक एक श्लोक के लिये लारमों देता और ब्राह्मणों को पट्टरस भोजन कराके तब आप खाने को बैठता, तीर्थ-यात्रा स्नान, दान और व्रत-उपवास में सदा तत्पर रहता। उसने बड़े बड़े चाद्रायण किये थे और बड़े बड़े जंगल पहाड छान डाले थे।

एक दिन शरद ऋतुमें सन्ध्या के समय फुलवाडी के बीच स्वच्छ पानी के कुण्ड के तीर जिसमें कुमुद और कमलो के बीच जलपत्ती विलोलें कर रहे थे, रत्नजटित सिंहासन पर कोमल तकिये के सहारे स्वस्थचित्त बैठा हुआ वह महलों की सुनहरी लगी हुई सगमरमर की गुमजियों के पीछे-से-उत्थ पृणिमा का चन्द्रमा देख रहा था और कारण मन ही मन में सोचता था कि

कुल को ऐसा प्रकाश किया जैसे सूर्य से इन कमलों का विकास होता है। क्या मनुष्य और क्या जीव जन्तु में अपना सारा जन्म इन्हीं का भला करने में गँवाया और व्रत उपवास करत फूल से शरीर को काटा गया। जितना मन ध्यान किया उतना तो कभी किसी के ध्यान में भी न आया होगा। जो में ही नहीं तो फिर और कान हा सकता है? मुझे अपने ईश्वर पर दावा है, वह अवश्य मुझे अच्छी गति देगा। ऐसा कर हा सकता है कि मुझे कुछ दोष लगे?

इसी असें मैं चौदह न पुकारा—‘चौधरी इन्द्रदत्त निगाह रुबरू।’ श्री महाराज मनामत भोज ने आँख उठाई, दीवान ने साष्टांग दण्डन की, फिर सम्मुख जा हाथ जोड़ या निवदन किया—“पृथ्वीनाथ, सड़क पर व कुँ जिनके वास्त आपने हुस्म लिया था वन कर तैयार हो गये। जो पानी पीता है, आप को असीस देता और जो उन पटा की छाया में विश्राम करता है आपको बढ़ती दालत मानना है।” राजा अति प्रसन्न हुआ और बोला कि, “मुन, मरी अमलदारी भरम जहाँ जहाँ सड़कें हैं, कोस कोस पर कुँ रोदना के सदाव्रत बैठा दें और दुतरफा पड भी जड़ लगा दें।” इसी असें मैं दानाव्यक्त ने आफर आशीर्वाद लिया और निवदन किया कि “वमावतार। वह जो पाँच हजार ब्राह्मण हर साल जाडे में रजाई पाते हैं सो डेगटो पर हाजिर हैं।” राजा न कहा—“अन पाँच के बदल पचास हजार को मिला करे और रजाई की जगह शाल दुशाले दिये जावें।” दानाव्यक्त के लाने के वास्त तोशेराने में गया। इमारत के प्रयोग

ने आकर मुजरा किया और खर ली कि 'महाराज ! इस बड़े मन्दिर की, जिसके जल्द बना देने के सम्मत्त सरकार से हुक्म हुआ है, आज नीचे खुद गई, पत्थर गड़े जाते हैं और लुहार लोहा भी तैयार कर रहे हैं ।' महाराज ने तितरियाँ बदल कर उस दरोगा को खूब घुडका "शरें मूर्ख, वहाँ पत्थर और लोहे का क्या काम है ? त्रिभुल मन्दिर सगमरमर और सगम्मा से बनयाया जाय और लोहे के त्रुले उममें मत्र जगह सोना काम में थाय जिस में भगवान भी उमें देय कर प्रमन्न हो जावे और मरा नाम इस सत्तार में त्रुलु कीर्ति पावे ।"

यह सुन सारा दरवार पुकार उठा कि "वन्य महाराज ! क्या न हो ? जय ऐमें हो तत्र नो ऐमें हो । आपने इस कलिकाल को सतयुग बना दिया, मानो धर्म का उद्धार करने को इस जान में अत्रनार लिया है । आज आपमें बढकर और दूसरा कोन ईश्वर का प्यारा है ? हमने नो पहले ही से आप को साक्षात् धर्मराज त्रिचारा है ।" व्यास जी न कथा आरम्भ की, भजन कीर्तन होने लगा । चाँद सिर पर चढ आया । घडियाली ने निवेदन किया कि, महाराज ! आधी रात के निकट है ।" राजा की आगों में नीचे आ रही थी, व्यास कथा कहत थ, पर राजा की आगों में ऊँच आती थी । वह उठ कर रनवास में गया ।

जडाऊ पलग और फूलों की सेज पर मोया । रानिया पैर दाबने लगी । राजा की आख भूप गई तो स्वप्न में क्या देखना है कि यह बडा सगमरमर का मन्दिर बनकर त्रिभुल तैयार हो गया कहीं उस पर नन्कासी का लाम किया है, वहा

त्रारोही और मफाई में हाथीदात को भी मान कर दिया है, जहाँ कहीं पच्चीसारी का हुनर दिखनाया है, यहाँ जयाहिरो को पत्थर में जड़ कर तमगीर का नमूना बना लिया है। यहाँ लालों के गुल्लकों पर नीलम की चुनचुलें बैठी हैं और आम की जड़ हीरो के लोलक नटकाए हैं, यहीं पुष्कराजों की डडियों से पन्ने के पत्ते निकाल कर मोनियों के मुट्टे लगाए हैं। सोन के चोमों पर शामियाँ और उनके नीचे यिन्दोर के दौड़ों में गुलार और फबड़े के फुहारें छूट रहे हैं। माना धूप जल रहा है। सैकड़ों कपूर के दीपक बल रहे हैं। राजा इतने ही मारे घमड़ के फूलकर मशक बन गया। कभी नीचे कभी ऊपर, कभी गहिन कभी बायें निगाह करता और मन में सोचना कि अन् इनन पर भी मुझे क्या फोड़ स्वर्ग में घुसने से रोकगा या पवित्र पुण्यात्मान कहेगा ? मुझे अपने कर्मों का भरोसा है, दुमरे निर्मा से क्या काम पडेगा ?

इसी असें में वह राजा उम सपने के मन्दिर में खड़ा खड़ा क्या देखता है कि एक ज्योति सी उसके सामने आसमान से उतरी चली आती है। उसका प्रकाश तो हजारों सूर्य से भी अधिक है, परन्तु जैसे सूर्य को बादल घेर लेता है उस प्रकार उसने मुँह पर घूँघट सा ढाल लिया है, नहीं तो राजा की आँखें का उस पर ठहर सकती थीं, इस घूँघट पर भी वे मारे चक्र चौंके के रूपकी चली जाती थीं, राजा उसे देखत ही काप उठा और लडखडाती सी जवान से बोला कि, "हे महाराज ! आप कौन हैं और मेरे पास किस प्रयोजन से आय हैं ?" उस पुरुष ने

बादल की गरज के समान गभीर उत्तर दिया कि "मैं सत्य हूँ, अधो की आँखें गोलता हूँ, मैं उनके आगे से धोरण की टट्टी हटाता हूँ, मैं मृगानृषणा के भटक हुआ का भ्रम मिटाता हूँ और सपने के भूले हुआ को नींद से जगाता हूँ। हे भोज ! अगर कुछ हिम्मत रखता है तो आ हमारे साथ आ और हमारे तेज व प्रभाव से मनुष्यों के मन के मन्दिरों का भेद ले, इस समय हम तेरे ही मन को जाँच रहे हैं ।" राजा के जी पर एक अजब दृश्य तो छा गई। नीची निगाह करके वह गर्दन खुजाने लगा। सत्य बोला, "भोज ! तू डरता है, तुझे अपने मन का हाल जानने में भी भय लगता है ?" भोज ने कहा, "नहीं, इस बात से तो नहीं डरता, क्योंकि जिसने अपने तर्क नहीं जाना, उसने फिर क्या जाना ? सिवाय इसकी मैं तो आप चाहता हूँ कि कोई मेरे मन की धाह लेव और अच्छी तरह से जाँचे। मारे व्रत और उपवासों के मने अपना फूल सा शरीर काँटा बनाया, ब्राह्मणों को दान दक्षिणा देते देते सारा राजाना खाली कर डाला, कोई तीर्थ बाकी न रखा, कोई नदी या तालाब नहाने से न छोड़ा, ऐसा कोई आदमी नहीं कि जिस की निगाह में मैं पवित्र पुण्यात्मा न ठहरूँ ।" सत्य बोला, "ठीक, पर भोज ! यह तो बतला कि तू ईश्वर की निगाह में क्या है ? क्या हवा में बिना धूप बसरेणु कभी दिखलाई देते हैं ? पर सूर्य की किरण पड़ते ही कैसे अनगिनत चमकने लग जाते हैं ! क्या कपड़े से छाने हुए मैले पानी में किसी को पीड़ मालूम पड़ते हैं ? पर जब खुर्दबीन शीश को लगा कर - े तो एक एक घूट में हजारों ही जीव सूझने लग जाते

उस रात के जानने से, जिसे अवश्य जानना चाहिए डरना नहीं तो आ मेरे माथे आ, मे तेरी आँखें गोलूँगा।”

निदान सत्य यह रुद्र राजा को उस बड़े मन्दिर के ऊँचे दरवाजे पर चढ़ा ले गया जहाँ से सारा पाप दग्धनाइ दता था, और फिर वहाँ उममे रहने लगा कि “भोज ! मैं अभी तेरे पाप कर्मों की कुछ भी चर्चा नहीं करना। क्योंकि तूने अपने तई निरा निपाप समझ रखा है, पर यह तो बतला कि तूने पुण्यकर्म सौन सौन से किये हैं कि जिन में सर्वशक्तिमान् जगन्नीश्वर मनुष्य होगा।” राजा यह सुन के अत्यन्त प्रसन्न हुआ। यह तो मानों उसका मन की बात थी। पुण्य कर्म का नाम ने उसका चित्त को कमल भा खिला दिया। उसे निश्चय था कि पाप तो मने चाहें किया हो चाहें न किया हो पर पुण्य मैंने इतना किया है कि भारी से भारी पाप भी उसके पासग में न ठहरेगा। राजा को वहाँ एक समय सपने में तीन पेड़ बड़े ऊँचे अपनी आँख के सामने दिखाई दिये। फलों से वे इतने लद हुए थे कि मारे मोह के उनकी टहनियाँ धरती तक झुक गई थीं। राजा उन्हें देखते ही हरा हो गया और बोला कि ‘सच, यह ईश्वर की भक्ति और जीसा की दया अर्थात् ईश्वर और मनुष्य दोनों की प्रीति का पेड़ है, जैसा, फलों का बोझ से यह धरती पर नये हैं। यह तीनों मर ही लगाये हैं। पहले में तो वे मर लाल लाल फल मेरे दान से लगे हैं और दूसरे में वे पीले पीले मेरे न्याय से और तीसरे में वे मर सफेद फल मेरे तप का प्रभाव दिखाते हैं।’ मानों उस समय यह ध्वनि चारों ओर से राजा के कानों में बली जानी थी

कि 'धय हो ! आज तुम सा पुण्यात्मा दूसरा कोई नहीं, तुम मात्तान् धर्म के अवनार हो, इस लोक मे भी तुमने घडा पद पाया है और उस लोक में भी इससे अधिक मिलेगा, तुम मनुष्य और ईश्वर दोनो की आँसो मे निर्दोष और निष्पाप हो । सूर्य के मण्डल में लोग कलक बतलाते हैं पर तुम पर एक छीटा भी नहीं लगाने ।”

सत्य बोला कि “भोज, जन में इन पेडों के पास था जिन्हें तू ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया क बतला है, तब तो इनमें फल फूल कुछ भी नहीं थे, निरे टूँठ से रखे थे। ये लाल, पाने और सकेद फल कहीं से आ गए ? ये सचमुच उन पेडों में फल लगे हैं या तुम्हें फुसलाने और बस करन को किसी न उनकी टहनियों से लटका दिये हैं ? चल, उन पेडों क पास चल कर देखें तो सहो । मेरी समझ में तो यह लाल लाल फल, जिन्हें तू अपने दान के प्रभाव से लगे बनल ता है, यश और कीर्ति फैलाने की चाह अर्थात् पाने की इच्छा ने इस पेड में लगाए हैं ।” निदान ज्योही सत्य ने उस पेड के छूने को हाथ बढ़ाया राजा सपने में क्या दृग्गता है कि वह सरे फन जैसे आसमान से ओले गिरते हैं एक आन की आन में धरती पर गिर पडे । धरती सारी लाल हो गई, पेडों पर सिवाय पत्तों क और कुछ न रहा । सत्य ने कहा कि राजा ! जैसे कोई चीज को मोम स चिपकाता है उसी तरह न ने अपने भुताने की प्रशसा की इच्छा स ये फन इस

लिए थे सत्य क तेज से यह मोम गल रह गया । जो तूने दिया और किया

दिल्लाने और मनुष्यों से प्रशंसा पाने के लिये। फल ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया से तो कुछ भी नहीं लिया। यदि कुछ दिया हो या किया हो तो तू ही क्या नहीं बतलाता? मूर्ख! इसी व भरास पर तू फूला हुआ स्वर्ग में जाने को तैयार हुआ था?" भोज ने एक ठण्डी साँस ली। उसने तो औरों को भूला समझा था, पर वह सब से अधिक भूला हुआ निकला। सत्य ने उस पड़ की तरफ हाथ बढ़ाया जो सोने की तरह चमकते हुए पीले पीले फलों से लदा हुआ था। सत्य बोला, "राजा, ये फल तू ने अपने मुलान को, स्वर्ग की स्वार्थ सिद्धि करने की इच्छा से लगा लिए थे। कहने वाले ने ठीक कहा है कि मनुष्य मनुष्य के कर्मों से उसका मन की भावना का विचार करता है और ईश्वर मनुष्य के मन की भावना के अनुसार उसके कर्मों का हिसान लेता है। तू अच्छी तरह जानता है कि यही न्याय तेरे राज्य की जड़ है। जो न्याय न करे तो फिर यह राज्य तेरे हाथ में क्यों कर रह सके? जिस राज्य में न्याय नहीं वह तो बेनीव का घर है, दुर्दिया व दान्तों की तरह हिलता है, अंग गिरा तब गिरा। मूर्ख, तू ही क्यों नहीं बतलाता कि यह तेरा न्याय स्वार्थसिद्धि करने और सामरिक सुख पाने की इच्छा से है अथवा ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया से?"

भोज की पेशानी पर पसीना हो आया, उसने आँखें नीची कर लीं, उससे जवाब कुछ न बन पड़ा। तीसरे पड़ की चारी थाइ। सत्य का हाथ लगते ही उसकी भी वही हालत हुई। राजा लज्जित हुआ। सत्य ने कहा—“मूर्ख! यह तेरे तप के फल

कदापि नहीं, इनको तो इस पेड़ पर तेरे आहूकार न लगा रखा था। यह कौनसा वन व तीर्थयात्रा है जो तू न निरहङ्कार कवल ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया से की हो? तूने यह तप काल इमी वास्त किया कि निममें तू अपने तई श्रोतों से अच्छा और बढ कर प्रियारे। ऐसे ही तप पर गोत्र-गानेन, तू स्वर्ग मिलन को सम्मोद रगना है ?

पर यह तो मतला कि मन्दिर की उन मुडेरों पर वे पत्नी से क्या निपलाई देते हैं? कैसे सुन्दर और प्यार मालूमहोते हैं। पर ना उनका पत्रे व हैं और गरइने कीरोज की, परन्तु पूँछ में तो मारे प्रकार के जगद्विज जड दिये हैं।' राजा क जी मे पमड की बिडिया न फिर फुरी फुरी ली, मानों बुझते हुए दीय की तरह जगमगा उठा, जदी से उत्तर दिया कि 'सत्य, यह जो कुछ तू मन्दिर की मुडेरों पर दर्शना है मरे सन्ध्या-वन्दन का प्रभाव है। मैंने जो राता जाग जाग कर और माथा रगडते २ इस मन्दिर की देहलीज को विस्तार ईश्वर की स्तुति वन्दना और विनती प्रार्थना की वही अब बिडिया की तरह पत्थे फैलाकर आकाश को जाती हैं, मानों ईश्वर व मामन पहुँच कर अब मुझे स्वर्ग का रास्ता बताती हैं।' सत्य ने कहा कि "राजा, वीनवन्धु, करुणासागर, श्रीजगन्नाथ जगदीश्वर अपने भक्तों की विनती सदा सुनता रहता है, और जो मनुष्य शुद्ध हृदय और निरुपट होकर नम्रता और श्रद्धा व साथ अपने दुष्कर्मों का पञ्चत्तप अथवा उनकी क्षमा होन का टुक भी निवेदन २ वह उसका निम्न तत्काल सूर्य चाँद का

बड़ी भारी विशेषता यह है कि इन्होंने कहीं पर भी रदू या रसी का एक शब्द भी प्रयुक्त नहीं किया।

इनका देहान्त १४ जुलाई सन् १८६६ को हुआ।

शकुन्तला

(एक बालक सिंधु के बच्चे को घसीटना हुआ जाना है, और दो तपस्विनी उसे रोकनी हुईं आती हैं)

बालक—अरे सिंधु, तू अपना मुँह खोल, मैं तेरे दाँत गिऊँगा।

पहली तपस्विनी—हे अन्यायी, तू इन पशुओं को क्यों सताता है, हम तो इन्हीं वाण-बच्चों के समान राखती हैं। हाय ! तेरा सद्गुण बढ़ता ही जाना है। तरा नाम ऋषियों ने मर्यादमन रक्खा है, संठीक ही है।

दुष्यंत—[आप-ही-आप] अहा ! क्या कारण है कि इतने स्नेह इस बालक में ऐसा होता जाता है, जैसा पुत्र न होने पर होता है, यदि न हो, यह हेतु है कि मैं पुत्र-हीन हूँ।

दूसरी तपस्विनी—जो तू बच्चे को छोड़ न दे, मैं यह सिंधुनी तुम्हारे दौड़ेगी।

बालक—[मुस्काकर] ठीक है, सिंधुनी का दुर्दंभ मैं ही डर है।

[इन्होंने सिंधुनी को छोड़ा]

दुष्यंत—

दीर्घत बालक मोहि यह दुर्दंभ करे,

।काठ काज जैस अग्निने द्रव्य है अग्निनी।

पहली तपस्विनी—हे प्यार इतना तू सिंधु के बच्चे को छोड़ दे, मैं तुम्हें और मिलौँ दूँगी।

दूसरी तपस्विनी—

दुष्यत—इसके तो लक्षण भी चन्द्रनियों के-से हैं क्योंकि

माँग खिलौना लैन को जयति पसारयो हाथ,

जालरुंथी-सी आगुरी सर दीर्घी इक माय ।

मनहुँ खिलायो कमल फलुप्रात अरुण न आय,

नैक न पपुरिन घीच म अंतर परत लघाय ।

दूसरी तपस्विनी—ह सुग्रता, यह बातों से न मानेगा । आ,

मेरी कुटी में एक मिट्टा का मोर ऋषिकुमार भारक डेय के ग्वलने का रक्खा है, उस ले आ ।

पहली तपस्विनी—मैं अभी लिए आती हूँ ।

[जाती है]

बालक—तब तक मैं इसी मिय क बच्चे से खेलूँगा ।

[यह कहकर तपस्विनी की ओर हँसता है]

दुष्यत—[आप ही-आप] इसके खिलाने को मेरा जी कैसा ललचाता है ।

हाँसी बिनहेत माहि नीरत बतीसी कछू,

निकसी मनो है पाँति ओखी कलिकान की,

बोलन चाहत बात टूटी-मी निकसि जात,

लागति अनूठी मीठी घानी तुतलान की ।

गोदते न प्यारी और भाव मन कोई ठाँव,

दौरि-दौरि बैठें छोडि भूमि अँगनान की ।

घय घन्य वे हें नर मैले जो करत गात—

कनिया लगाई घूरि ऐसे सुग्रतान की ।

दूसरी तपस्विनी—यह मेरी बात तौ कान नहीं धरता । [इधर-

उधर देखकर] कोई ऋषिकुमार यहाँ है, [दुप्यंत को देखकर] हे महात्मा, तुम्हीं आओ, कृपा करके इस बली बालक के हाथ से सिंह के बच्चे को छुड़ाओ। यह इसे खेल में ऐसा पकड़ रहा है कि छुड़ाना कठिन है।

दुप्यन्त—अच्छा। [लडके के पास जाकर और हँसकर] आश्रम-वासिन की यह रीति, पशु-पालन में राखन प्रीति, सो ऋषि-सुत दूषित तैं कीनी, उलटी वृत्ति यहाँ स्यों लीनी। करत जन्म ही तैं ये काजा, जो नहीं सोहत मुनिन-समाजा, तैं यह कियो तपोवन ऐसो, कृप्या मर्प-शिशु चन्दा जैसो।

दूसरी तपस्विनी—हे, बडभागी यह ऋषिकुमार नहीं है।

दुप्यन्त—सत्य है, यह तो इसका आकार-सदृश काम ही कहे देते हैं परन्तु मैंने तपोवन में इसका वास देखा ऋषि-पुत्र जाना था। [जैसी मन में लालसा है, लडके का हाथ अपने दाथ में लेकर आप ही-आप]

ना जानूँ का बश कौ अँकुर यहै कुमार,
मो तन ऐतौ मुल भयो जाहि छुअत डक नार।
वा बडभागी के हिये कितो न होय उमँग,
उपज्यो जाफ अँग तैं ऐसो याको अँग।

तपस्विनी—[दोनों की ओर देखकर] बडे अचभे की बात है।

दुप्यन्त—तुमको क्या अचभा हुआ ?

तपस्विनी— इसलिये हुआ कि इस बालक की और तुम्हारी उनहार बहुत मिलती है, और तुम्हें जाने बिना भी इसने तुम्हारा कहना मान लिया।

दुष्यन्त—[लडके को गिलाता हुआ] छ तपस्विनी, जो यह ऋषि-पुत्र नहीं, तौ किमका वश है ?

तपस्विनी—यह पुरुषही है ।

दुष्यन्त—[आप ही-आप] यह हमारे वश का कैसे हुआ, इम भागवनी न मरी उनहार का इमे क्यों कडा—हाँ, पुरुवरियों में यह रीति तौ निश्चय है कि—

द्विदिपालन के कारने पहले लेत निवास,
जाय भजन ऐसेन मे जहँ सब भोग-विलास ।
पाछे वन में वसत हैं लै तरवर की छाँह,
इन्नी जीतन कौ नियम धरि एरुहि मन माँह ।

[प्रगट] परन्तु यह ऐसा म्थान नहीं है, जहाँ मनुष्य अपने बल से आ सके ।

दूसरी तपस्विनी—तुम सच कहते हो, इसकी मा मेनका नाम अप्सरा की बेटी है, उसी क प्रताप से इसका जन्म देव-पितर क इम तपोवन में हुआ है ।

दुष्यन्त—[आप ही आप] यह दूसरी बात आशा उपजान वाली हुई । [प्रगट] भला, इसकी मा किस राजर्षि की पत्नी है ?

दूसरी तपस्विनी—जिसने अपनी विवाहिता स्त्री को बिना अपराध छोड दिया, उसका नाम कौन लेगा ?

दुष्यन्त—[आप-ही-आप] यह कथा तौ मुझी पर लगती है । अब इस बालक की माँ का नाम पूछूँ । [मोचकर] परन्तु पराई स्त्री का घृत्तांत पूछना अन्याय है ।

[तपस्विनी मिट्टी का मोर लिए हुए आती है]

तपस्विनी—हे सर्वदमन ! यह शकुन्तलावयव देग्य ।

बालक—[बड़े धाव से देग्यकर] कहीं है शकुन्तला मेरी मा ?

दोनों तपस्विनी—यह मा क प्यारे नाम से धोग्या खा गया ।

दूसरी तपस्विनी—मुन्ना, मैंने तो यह रूहा था कि इम मिट्टी के सुन्दर मोर को देख ।

दुष्यन्त—[आप ही-आप] क्या इमकी मा का नाम शकुन्तला है । हुआ करे, एक नाम के अनेक मनुष्य होत हैं । कहीं मुझे दुःख देने को नाम का नभारण ही मृग-तृष्णा के ममान न बना हो ।

बालक—मुझे यह मोर बहुत अच्छा लगता है ।

[सिलौने को लेता है]

पहली तपस्विनी—[धबराकर] हाय-हाय ! इसकी बाँह से रक्षा बधन कदाँ गया ।

दुष्यन्त—धबराओ मत, जब यह नाहर के बच्चे से खेल रहा था, इमक हाथ से गडा गिर गया, सो यह पडा है ।

[गडा उठाने को मुकता है]

दोनों तपस्विनी—मत उठाओ, मन उठाओ । हाय ! इसने क्यों उठा लिया ।

[दोनों अचभे से धानी पर हाय रखकर एक दूसरी की ओर देखती हैं]

दुष्यन्त—तुमने मुझे इमक उठाने से किस लिए बरजा ?

दोनों तपस्विनी—मुझे महाराज, इस गडे का नाम अपराजित है, बालक का आत-कम हुआ, महात्मा मरीचि के दिया था । इसमें यह गुन है कि

पर गिर पड़े, तो इस बालक को और इसके मा-पाप को छोड़ और कोई न उठा सके।

दुष्यन्त—और जो कोई उठा ले तो ?

पहली तपस्विनी—तौ बड़ तुरन्त साँप घनकर उसे डमना है।

दुष्यन्त—तुमने ऐसा होते कभी देखा है ?

दोनों तपस्विनी—अनेक बार।

दुष्यन्त—[प्रसन्न होकर आप-ही-आप] अब मेरा मनोरथ पूरा हुआ। मैं क्यों आनन्द न मनाऊँ।

[लडके को गोद में लेता है]

दूसरी तपस्विनी—आओ मुझता यह सुन्य का समाचार चल क शकुन्तला को सुनावें, वह बहुत दिन स वियोग क कठिन नेम कर रही है।

[दोनों जाती हैं]

बालक—मुझे छोड़ो, मैं अपनी मा के पास जाऊँगा।

दुष्यन्त—हे पुत्र, तूमेरे सग चलकर अपनी मा को सुर दीजो।

बालक—मेरा पिता तो दुष्यन्त है, तुम नहीं हो।

दुष्यन्त—[मुसकाकर] यह विवाद भी मुझे प्रतीत कराता है।

[एक बेनी धारण किए शकुन्तला आती है]

शकुन्तला—[आप ही-आप] मैं सुन तौ चुकी हूँ कि सर्वदमन के गडे ने औसर पाकर भी रूप न पलटा, परन्तु अपने भाग्य का मुझे कुछ भरोसा नहीं। हाँ इतनी आशा है कि कदाचित् सानुमती का कहना सच्चा हो गया हो।

नियम कर बीते दिवस दूबर अङ्ग लखात,
सीस एक बेनी धरे घसन धूसरे गात ।
दीरघ बिरहाघ्नत सती साधति सुख विसराय,
मो निरदय के कारणे अपने शील सुभाय ।

शकुन्तला—[पद्यतावे में रूप बिगडे हुए राजा को देखकर]
यह तौ मेरा पति—सा नहीं है, और जो नहीं है, तौ कौन है, जिसने
रक्षाबन्धन पहन हुए मेरे बालक को अङ्ग लगाके दूषित किया ?

बालक—[दौड़ता हुआ माता के पास जाकर] माता, यह
पुरुष कौन है, जिसन पुत्र कहकर मुझे गोद में ले लिया ।

दुष्यत—हे प्यारी मैंने तेरे साथ निठुराई तौ बहुत की, परन्तु
परिणाम अच्छा हुआ, क्योंकि मैं देखता हूँ कि तेने मुझ पहचान
लिया ।

शकुन्तला—[आप-ही-आप] अरे मन ! तू धीरज धर, अब
मुझे भरोसा हुआ कि विधाना ने ईर्ष्या छोड़ मुझ पर दया की है ।
[प्रकट] यह तौ निश्चय मेरा ही पति है ।

दुष्यत—हे प्यारी !

सुधि आई, सब भ्रम मिट्यो, सफल भए मम काज,
धन्य भागि सुमुखी लखूँ सनमुख ठाडी आज ।
अधकार मिटि प्रहया कौ दूर होत जब सोग,
तुरत चन्द्र सौं रोहिनी करति आय सयोग ।

शकुन्तला—महाराज की—

[इतना कहकर गद्गद बानी हो आई गिगानी है ।

हे, मा यह पुरुष कौन है ?

शकुन्तला—चेटा, अपन भाग्य से पूछो ।

दुप्यत—[शकुन्तला क पैरा में गिरता है]

मनतेँ प्यारी दूर अय डारि मिलग अपमान,
वा छिन मेरे हिय रह्यो प्रबल कछू अदान ।
तामस प्रम गति होनि यह बहुनन की सुखमार,
फँकन जिमि अहि जानिक अध दियो गलहार ।

शकुन्तला—उठो प्राणपति, उठो ! उस दिनाँ मेरे पूर्वजन्म के पाप उदय हुए थे, जिन्हाने मुझमौँ का फल मेट मेरे दयावान पति को मुझ से नि सनह कर दिया । [राजा उठता है] अब यह कहे कि मुझ दु गिया की सुख तुम्हें कैसे आई ?

दुप्यत—जय सताप का काँटा मेरे कलेजे में तिकल जायगा, नय सन कहूँगा ।

शकुन्तला—[राजा की अँगुली में अँगूठी देखकर] क्या यह वही मुँदरी है ।

दुप्यत—हाँ, इसी क मिलत मुझे तरी सुख आई ।

शकुन्तला—इसन बुरा किया कि जय में अपन स्वामी को प्रतीत करती थी यह दुर्लभ हो गई ।

दुप्यत—हे प्यारी, अब तू इसे फिर पहन । जैसे शत्रु के आने पर लता फिर फूल धारन करती है ।

शकुन्तला—मुझे इसका विश्वास नहीं रहा, तुम्हीं पहने रहो ।

[मातलि आता है]

मातलि—महाराज धन्य है यह दिन कि आपन फिर धर्मपत्नी पाइ, और पुत्र का मुख देखा ।

दुप्यत—हाँ, आज मेरा मनोरथ सफल हुआ। हे मातलि, तुम यह नौ पढ़ो कि इस वृत्तांत को इन्द्र ने जान लिया था कि नहीं।
मातलि—[हँसकर] देवताओं से क्या छुपा है। अब आओ, महात्मा कश्यप आपको दर्शन देंग।

दुप्यत—प्यारी, तू पुत्र का हाथ थाम ले, मैं तुम्हें आगे लेकर महात्मा का दर्शन करना चाहता हूँ।

शकुन्तला—तुम्हारे सग घड़ों पर सन्मुख जाते तुम्हें सजुब लगनी है।

दुप्यन्त—ऐसे शुभ अवसर पर ऐसा ही करना उचित है, आओ।

[सब घूमते हैं]

[आसन पर बैठ कश्यप और अदिति दीखते हैं]

कश्यप—[राजा की ओर देखकर] हे दक्षसुत !

हे यह तेरे पुत्र को रत्न-अगमानी भूप,

नाम जासु दुप्यत है कीरति जासु अनूप।

जाके धनुष-प्रताप तें लहि के अब विश्राम—

शोभा ही को रहि गयो इन्द्र-वच्य अभिराम।

अदिति—बडाई तौ इनक रूप ही से दीखती है।

मातलि—[दुप्यत] हे राजा, ये देवताओं के माता-पिता आपकी ओर प्यार की दृष्टि से ऐसे देख रहे हैं, जैसे कोई अपने पुत्र को देखता है। आओ, इनक निकट चलो।

दुप्यत—हे मातलि ! क्या कश्यप और अदिति यही हैं ?

इनहिं दुहुन को ऋषि-मुनि धावे, द्वादस रवि के जनक बनावें,

हैं मरीचिसुत दक्षसुता रु, नाती अरु नातिन प्रज्ञा पे ।
सुर-नायक इन्हीं ने जायो, जो निरलोकीनाथ कहायो,
विधि ते परे पुरुष जो कोऊ, इनकी कोय अवतरयो सोऊ ।

मातलि—हाँ, ये ही हैं ।

दुष्यत—[प्रणाम करव] हे महात्माओ ! तुम्हारे पुत्र का
आज्ञाकारी दुष्यत प्रणाम करना है ।

कश्यप—बेटा, नू चिरजीव होकर पृथ्वी-पालन करे ।

अदिति—बेटा, तू रण में अजित हो ।

शकु०—मैं भी आपने चरणों में बालरु-समेत बटना करती हूँ ।

कश्यप—ह पुत्री ।

भारत तेरो इन्द्र सम सुत जयत उपमान ,

और कहा वर दहूँ तुहि तू हो सची-समान ।

अदिति—हे पुत्री, तू सदा पनि की प्यारी हो और यह
वास्तक नीधायु होकर दोनों कुल का दीपक हो । आओ, बैठो ।

[सत्र प्रजापति क सामने बैठते हैं]

कश्यप—[एक एक की ओर दक्षकर दुष्यत से]

नारि सती, सुन शुद्ध कुल, तुम राजन सिर-भौर ,

श्रद्धा विधि अरु वित्त-सम मिले धन्य इक ठौर ।

दुष्यत—ह महर्षि, आपका अनुग्रह बडा अपूर्व है ।

फूल लगे तब होत फल, धन आवे तत्र मेह ,

कारण कारज गति यही तामे नहि सदह ।

पै अइसुत तुम्हरी कृपा देखी मैंन काज ,

वर तुमने पाँ दियो पहले पुजयो काज ।

मातलि—प्रजापतिर्यों की कृपा का यही प्रभाव है ।

दुष्यंत—हे भगवन, आपकी इस दासी का विवाह मरे साथ गांधव रीति से हुआ था, फिर कुछ काल पीते मायके के लोग इसे मेरे पास लाए । उस समय मेरी ऐसी सुन भूली कि इसे पहचान न सका, और इसका त्याग करके मैं आपके सगोत्री कन्व का अपराधी बना । पीछे अग ठो दएकर मुझे सुन आई कि कन्व की बेटी से मेरा व्याह हुआ था, यह वृत्तांत अवरज-सा दीखता है ।

लखि सनमुख हाथी जिमि कोई कहे कि यह हाथी नहिं होई, निकसि जाय तब शका लाव, हाँ कचहँ-कचहँ ना गावे । रोज दखि फिर हाथी जाने निश्चय भूल आपनी माने, याही विधि गति मो मन करी, उलटि पलटि लीनी बहु फेरि ।

कश्यप—हे बेटा, जो कुछ अपराध हुआ, उनका सोच अपने मन से दूर कर, क्योंकि तुम्हें उस समय भ्रम ने घेर लिया था, अब सुन ।

दुष्यंत—मैं एकप्र-चित्त होकर सुमता हूँ, आप कहें ।

कश्यप—जय अप्सरा-तीर्थ पर जाकर मेनका ने शकुन्तला को व्याकुल देखा तो उसे लेकर अद्रिति के पास आई । मैंने उसी समय ध्यान-शक्ति से जान लिया कि तैने अपनी पतिघना को 'केवल दुर्वासा के शाप-बश छोडा है, और इस शाप की अवधि सुदरी क दर्शन तक रहेगी ।

दुष्यंत—[आ-ही-आप] ती मैं धर्मपत्नी परित्याग के अपराद से बच गया ।

शकुन्तला—[आप-ही-आप] धन्य है कि स्वामी ने मुझे जान बूझ-कर नहीं त्यागा । परन्तु मुझे सुध नहीं है कि शाप कब हुआ, अथवा उस समय पतिवियोग के सोच में वेसुध हूँगी, क्योंकि मेरी सरियों ने मुझे जता दिया था कि अपने भरता को अगूठों दिया देना ।

कश्यप—हे पुत्री, अब तू कृतार्थ हुई अपने पति का अपराध मत समझ ।

निठुर भयो पति भूलि सुधि तू त्यागी वश शाप,
 दर्द तोहि अब भ्रम भिटे सत्र विधि प्रभुता आप ।
 छाया परनि न मुकर में मैल कछू जो होई,
 पै दीरन है सहज ही जब डार्यों वह धोई ।

दुष्यत—महात्मा, यह मेरे वश की प्रतिष्ठा है।

[बालक का हाथ पकड़ता है]

कश्यप—यह भी जान लो कि यह बालक चक्रवर्ती होगा ।

सुलगामी रथ पै चढ्यो उतरि महोदधि पार,
 जीतगो यह वीर नर तीन दीप अरु चार ।
 किए पशू बस सब यहाँ सर्वदमन भौ नाम,
 प्रजा भरणा कर होयगो फेरि भरत अभिराम ।

दुष्यत—जिसके आपने सस्कार किये हैं उसमें हमको किस किस बड़ाई की आशा नहीं ।

अदिति—हे भगवन्, शकुन्तला के मनोरथ सिद्ध हुए इस लिए इससे पिता को भी यह वृत्तान्त सुनाना चाहिये, और इसकी माता तौ मेरे ही पास है वह सब जानती है ।

शकुंतला—[आप-ही आप] इस भगवती ने तौ मेरे ही मन की कही ।

कश्यप—अपने तप के बल से कन्व मुनि सब वृत्तान्त जानने होंगे ।

दुष्यंत—इसी से तो मुनि ने मुझ पर क्रोध न किया ।

कश्यप—तौ भा हमें उचित है कि कन्व को यह भगल-मन्-चार सुनावें । कोई है रे यहाँ ?

चेला—महात्मा, क्या आज्ञा है ?

कश्यप—हे गालव, तू अभी आकाश मार्ग में दौड़ कर मेरे पास जा, और मेरी ओर से यह भगल मन्चा, दुर्वासा का शाप मिट जाने पर आज दुष्यंत ने पहचान कर अगीकार कर ली ।

कश्यप—कहो पुत्र, अब तुम्हें और क्या आशीर्वाद दूँ ?

दुष्यत—जो आपन कृपा की है, इससे अधिक आशीर्वाद क्या होगा, और कदाचित् आप पुछत ही हैं, तो भरत का वचन पूरा होने दीजिए ।

प्रजा काजे राजा नित सुकृत पै उद्यत रहैं,
बड़े बड़दानी हित-सहित पूजें सुरसुती ।
रमास्वामी शशु जगतपति नीलोहित प्रभु—
छुटावैं मोहू कों विपति अति आनागवन सों ।

कश्यप—तथास्तु ।

[सत्र वादर जाते हैं]



स्वामी दयानन्द (सन् १८२४-१८८३)

स्वामी जी का जन्म सन् १८२४ म गुजरात देश के मोरवी नाम नगर में हुआ । आपका जन्मनाम मूलश कर था । आपके पिता प० अम्भाशकर एक औद्योग्य ब्राह्मण और जागीरदार थे ।

आप की अवस्था जब १४ बरस की थी तो आपने पिता की आज्ञा से शिवरात्रि व्रत रक्खा । शिवपूजन के बाद रात को एक चूहे को शिवलिङ्ग पर चढ़ाई हुई मिठाई आदि को खाते दख आप को मूर्तिपूजा से घृणा सी आई और साथ ही मच्छे मार्ग की रोज की लगन हो गई ।

बीस वर्ष की अवस्था में आप घर छोड़ निकल पड़े और योग्य गुरु की रोज करने लगे । अन्त में मथुरा म स्वामी विरजानन्द को अपना गुरु मान उनसे विद्याभ्यास करने लग ।

स्वामी विरजानन्द स वेदादि शास्त्र पढ़ कर अपने ध्येय का प्रचार करने को आप भारत के प्रान्त प्रान्त में घूमे और आर्य-समाजों का स्थापन किया । आप सस्कृत के अगाध पंडित थे । आपकी मातृभाषा गुजराती थी तो भी आपने अपने सत्र ग्रन्थ हिन्दी में ही लिखे । आप हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाना चाहते थे ।

आपने सत्यार्थप्रकाश, सस्कारविधि, वेदादिभाष्यभूमिका आदि अनेकों ग्रन्थ हिन्दी में ही लिखे हैं ।

आपका दशान्त सन् १८८३ मे अजमेर में हुआ ।

राजधर्म

जो दण्ड है वही पुण्य, राजा, वही न्याय का प्रचारकर्त्ता और सब का शासनकर्त्ता, वही चार वर्गों और चार आश्रमों के धर्म का प्रतिभू अर्थात् जामिन है। वही प्रजा का शासनकर्त्ता मध्व प्रजा का रक्षक मोते हुए प्रजास्थ मनुष्यों में जागता है इसीलिये बुद्धिमान लोग दण्ड ही को धर्म कहते हैं। जो दण्ड अच्छे प्रकार विचार से धारण किया जाय तो वह मध्व प्रजा को आनन्दित कर देता है और जो बिना विचारे चलाया जाय तो सब ओर से राजा का विनाश कर देता है। बिना दण्ड के सब वर्गों दूषित और सब मर्यादा छिन्न भिन्न हो जाये। दण्ड का अभाव होने से सब लोगों का प्रकोप हो जाय। जहाँ कृपावर्ण रक्षनेत्र भयकर पुण्य के पापों का नाश करनेहारा दण्ड विचरता है वहाँ प्रजा मोह को प्राप्त न होके आनन्दित होती है परन्तु जो दण्ड का चलाने वाला पक्षपात रहित विद्वान् हो तो। जो उस दण्ड का चलाने वाला सत्यवादी विचार प करने द्वारा बुद्धिमान् धर्म अर्थ और काम की सिद्धि करने में परिणत राजा है उसी को उस दण्ड का चलाने वाला विद्वान् लोग कहते हैं। जो दण्ड को अच्छे प्रकार राजा चलाता है वह धर्म अर्थ और काम की सिद्धि को बढ़ाता है और जो विषय में लम्पट, टेढा, ईर्ष्या करनेहारा बुद्धि नीचबुद्धि न्यायाधीश राजा होता है, यह दण्ड से ही मारा जाता है। जब दण्ड बड़ा तजोमय है उसको अविद्वान् अधमात्मा धारण नहीं कर सकता तब वह दण्ड धर्म

से रहित कुटुम्बमहित राजा ही का नाश कर देता है। क्योंकि जो आप्त पुत्रपा क सहाय, विद्या, मुशिक्षा से रहित, विषयों में आसक्त मूढ है वह न्याय में दण्ड को चत्ताने में समर्थ कभी नहीं हो सकता। और जो पवित्र आत्मा मत्याचार और मत्पुत्र्या का सगी यथावत् नीति शास्त्र के अनुकूल चलने द्वारा श्रेष्ठ पुरुषों के महाय से युक्त बुद्धिमान् है वही न्याय रूपी दण्ड के चलान में समर्थ होता है।

सब सेना और सेनापतियों के ऊपर राज्याधिकार, दण्ड देन की व्यवस्था क मत्र कार्यों का आधिपत्य और सब के ऊपर वर्तमान सर्वाधीश राज्याधिकार इन चारों अधिकारों में सम्पूर्ण वेद शास्त्रों में प्रवीण पूर्ण विद्या वाले धर्मात्मा जिनेन्द्रिय सुशील जनों को स्थापित करना चाहिए अर्थात् मुख्य सेनापति, मुख्य राज्याधिकारी, मुख्य न्यायाधीश, प्रधान और राजा ये चार सब विद्याओं में पूर्ण विद्वान होने चाहिये। न्यून से न्यून दश विद्वानों अथवा बहुत न्यून हों तो तीन विद्वानों की सभा जैसी व्यवस्था करे उम धर्म अर्थात् व्यवस्था का उल्लंघन कोई भी न करे। इस सभा में चारों वेद, न्यायशास्त्र, निरुक्त, धर्मशास्त्र आदि के वेत्ता विद्वान सभासद् हों परन्तु वे ब्रह्मचारी, गृहस्थ और वानप्रस्थ हो तब वह सभा [हो] कि जिसमें दश विद्वानों से न्यून न होने चाहिये। और जिस सभा में ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद क जानने वाले तीन सभासद् हो क व्यवस्था करें उस सभा की की हुई व्यवस्था को भी कोई उल्लंघन न करे। यदि एक अकेला सब का जानने द्वारा द्विजों में उत्तम सन्यासी जिस धर्म की

व्यवस्था करे वही श्रेष्ठ धर्म है क्योंकि अज्ञानियों के सहस्रों लाखों क्रोड़ों मिल के जो कुछ व्यवस्था कर उसको कभी न मानना चाहिये । जो ब्रह्मचर्य सत्यभाषणादि व्रत वेदवित्या वा विचार से रहित जन्ममात्र से शूद्रवत् वर्त्तमान हैं उन सहस्रों मनुष्यों के मिलने से भी सभा नहीं कहाती । जो अविश्यात्त मूर्ख वेदों के न जानने वाले मनुष्य जिस धर्म को कहे उसको कभी न मानना चाहिये क्यों कि जो मूर्खों के कहे हुए धर्म के अनुसार चलते हैं उनके पीछे सैंकड़ों प्रकार के पाप लग जाते हैं । इस लिये तीनों अर्थात् विद्यासभा धर्मसभा और राजसभाओं में मूर्खों को कभी भरती न करे किन्तु सदा विद्वान् और धार्मिक पुरुषों को स्थापन करे ।

ऐसे लोग राजा और राजसभा के सभामद् तब हो सकते हैं कि जब वे चारों वेदों की कर्मोपासना ज्ञान क्रियाओं के जाननेवालों से तीनों विद्या सनातन दण्डनीति न्यायविद्या आत्मविद्या अर्थात् परमात्मा के गुण कर्म स्वभावस्वरूप को यथावत् जाननेरूप ब्रह्मविद्या और लोक से वार्ताओं का आरम्भ (रहना और पूछना) सीखकर सभासद् वा सभापति होसकें । सब सभामद् और सभापति इन्द्रियों को जीतने अर्थात् अपने वश में रख के सदा धर्म में वर्त्त और अधर्म से दृटे हटाए रहे इसलिए रात दिन नियत समय में योगाभ्यास भी करत रहे क्योंकि जो जितेन्द्रिय कि अपनी इन्द्रियों (जो मन, प्राण और शरीर प्रजा है इस) को जीत विना बाहर की प्रजा को अपने वश में स्थापन करने को समर्थ कभी नहीं हो सकता । दृढोत्साही होकर काम से दश और क्रोध से आठ

दुष्ट व्यसन कि जिनमें फँसा हुआ मनुष्य कठिनता से निकल सके
 उनको प्रयत्न से छोड़ और ठुड़ा दवे। क्योंकि जो राजा काम से
 उत्पन्न हुए दश दुष्ट व्यसनों में फँसता है वह अर्थ अर्थात् राज्य
 धनादि और धर्म से रहित हो जाता है और जो क्रोध से उत्पन्न हुए
 आठ बुरे व्यसनों में फँसता है वह शरीर से भी रहित हो जाता है।
 काम से उत्पन्न हुए व्यसन गिनाते हैं देखो—मृगया खेलना, (अर्द्ध)
 अर्थान् चौपड खेलना, जुआ खेलनादि, दिन में सोना काम कथा
 वा दूसरे को निन्दा किया करना, मादक द्रव्य अथात् मद्य, अफीम
 भाँग, गोंजा, चरस आदि का सेवन, गाना, बजाना, नाचना
 वा नाच कराना सुनना और देखना, गृथा डार उधर घूमते रहना,
 ये दश कामोत्पन्न व्यसन हैं। क्रोध से उत्पन्न व्यसनों को गिनाते
 हैं—“पैशुन्यन्” अथात् चुगलो करना, द्रोह रचना, ईर्ष्या अर्थात्
 दूसरे की बढ़ाई वा उन्नति देखकर जला करना, “असूया” दोषों में
 गुण, गुणों में दोषारोपण करना, “अर्थदूषण” अर्थात् अधर्मयुक्त
 बुरे कामों में घनादि का ब्यय करना, कठोर वचन बोलना और
 बिना अपराध कडा वचन वा विशेष दण्ड देना ये आठ दुर्गुण
 क्रोध से उत्पन्न होते हैं। जो सब विद्वान् लोग कामज और क्रोधजों
 का मूल जानते हैं कि जिनसे ये सब दुर्गुण मनुष्य को प्राप्त होते
 हैं उस लोभ को प्रयत्न से छोड़े। काम के व्यसनों में बड़े दुर्गुण
 एक मद्यादि अर्थात् मदकारक द्रव्यों का सेवन, दूसरा पासों आदि
 से जुआ खेलना, तीसरा स्त्री व्यसन, चौथा मृगया खेलना ये चार
 महादुष्ट व्यसन हैं। और क्रोधजों में बिना अपराध दण्ड देना, कठोर
 बोलना और घनादि का अन्याय में खर्च करना ये तीन क्रोध

स्वामी श्यामाजी

से उत्पन्न हुए बड़े दुःखदायक दोष हैं। जो ये सात दुर्गण दोनों कामज और मोघज दोषों में गिने हैं इनमें से पूर्व २ अर्थात् व्यर्थ व्यय से बठोर बचन, बठोर बचन से [अन्याय], अन्याय से दरदरना, इससे मृगया खेलना इससे जुआ अर्थात् लूट करना और इसमें भी मृगयादिसेवन करना बड़ा दुष्ट व्यसन है। इसमें यदि निश्चय है कि दुष्ट व्यसन में कैसनेसे मर जाना अच्छा है क्यों कि जो दुष्ट व्यसन पुरुष है वह अधिक भियोगा तो अधिक २ पाप करके नीच २ अर्थात् अधिक २ दुःख को प्राप्त होता जायगा और २ व्यसन में नहीं कैसा वह मर भी जायगा तो भी सुख के प्राप्ति जायगा इस लिये विशेष राजा और सब मनुष्यों को चेता है कि कभी मृगया और मृगपातादि दुष्ट कामों में न पड़े और दुष्ट व्यसन से पृथक् होकर धर्मयुक्त गुण्य कर्म स्वभावों में मन्त्रों के द्वारा काम किया करें। राजसभामद और मन्त्रों के द्वारा काम करें।

स्वराज्य स्वदेश में उत्पन्न हुए बड़े दुःखदायक दोष, शूरवीर, जिनका लक्ष्य अर्थात् विचार निश्चय न हो और कुतूहल, अच्छे प्रकार सुपरीक्षित, सात व इष्ट व्यसन दमिद व्यसन "सचिवान" अर्थात् मन्त्री करें। कौन किसके राज्य के दिग्गज जो सुगम कर्म है वह भी एक के करने में इच्छित हो जाता है जो ऐसा है तो महान् राज्यकर्म एक में कैसे हो सकता है? इन्हीं एक को राजा और एक को बुद्धि का राज्य के कार्य करने रखना ही बुरा काम है। इन्हीं व्यसन को दूर करने के लिये

से इष्ट व्यसन मन्त्रियों के से (दन्वि) निश्चय विमो से

[स्थान] स्थिति समय को देय व चुपचाप रहना अपने राज्य की रक्षा करके बैठ रहना (ममुदयन्) जब अपना उदय अथवा वृद्धि हो तब दुष्ट शत्रु व चढ़ाई करना (गुप्तिम्) मूल राजसेना कोश आदि की रक्षा (लब्धप्रशमनानि) जो २ दश प्राप्त हों उस उम में शान्तिस्थापन उपद्रवरहित करना इन छ गुणों का विचार नित्यप्रति किया करें। विचार करना कि उन समामदोंका पृथक् २ अपना २ विचार और अभिप्राय को सुनकर बहुपक्षानुसार कार्यों में जो कार्य अपना और अन्य का हितकारक हो वह करने लगना। अन्य भी पवित्रात्मा, बुद्धिमान, निश्चितबुद्धि, पदार्थों व समूह करने में अनिचतुर, सुपरीक्षित मन्त्री करें। जितन मनुष्यों से राज्यकार्य मिद्ध हो सक उतन आलस्यरहित चलान और बडे २ चतुर प्रधान पुरुषों को अधिकारी अर्थात् नौकर कर। इनके आधीन शूरवीर चलान कुनोत्पन्न पवित्र भृत्यों को बड २ कमों में और भीरु डरनवालों को भीतर के कमों में नियुक्त करें। जो प्रशसित कुल में उत्पन्न चतुर, पवित्र, हावभाव और चेष्टा से भीतर हृदय और भविष्यत् में होत वाली बात को ज्ञानन-हारा, सत्र शास्त्रों में विशारद चतुर है, उस दूत को भी रखले। वह ऐसा हो कि राज काम में अत्यन्त उत्साह प्रीतियुक्त, निष्कपटी पवित्रात्मा, चतुर, बहुत समय की बात को भी न भूलने वाला, देश और कालानुकूल वर्तमान का कत्ता, सुन्दर रूपयुक्त, निर्भय और बडा वक्ता हो वही राजा का दूत होने में प्रशस्त है। किम २ को क्या २ अधिकार देना

अमात्य को दण्डाधिकार, दण्ड में विनय किया अर्थात् जिससे अन्यायरूप दण्ड न होने पावे, राजा व आधीन कोश और राजकार्य तथा सभा के आधीन सब कार्य और दूत के आधीन किसी से मेल व विरोध करना अधिकार दे। दूत उसको कहत हैं जो फूट में मेल और मिले हुए दुष्टों को फोड़ तोड़ देवे। दूत वह कर्म करे जिससे शत्रुओं में फूट बड़े। वह सभापति और सब सभासद या दूत आदि यथार्थ से दूमरे विरोधी राजा के राज्य का अभिप्राय जान के ऐसा प्रयत्न करे कि जिससे अपने को पीडा न हो। इस लिये सुन्दर जङ्गल धन धान्ययुक्त दश में (धनुर्दुर्गम्) धनुर्धारी पुष्पों से गहन (महीदुर्गम्) मट्टी से किया हुआ (अब्दुर्गम्) जल से घेरा हुआ (वार्द्धम्) अर्थात् चारों ओर वन (नृदुर्गम्) चारों ओर सेना रहे (गिरिदुर्गम्) अर्थात् चारों ओर पहाड़ों के बीच में कोट बना के इसके मध्य में नगर बनावे। और नगर के चारों ओर (प्राकार) प्रकोट बनावे, म्या कि उसमें स्थित हुआ एक वीर धनुर्धारी शस्त्रयुक्त पुरुष मो के साथ और सौ दश हजार के साथ युद्ध कर सकते हैं इसलिए अवश्य दुर्ग का बनाना उचित है। वह दुर्ग शस्त्र धन, धान्य, वाहन, ब्राह्मण जो पढाने उपदेश करनेहारे हों (शिल्पी) कारीगर, यन्त्र नाना प्रकार की कला, (यवसेन) चारा घाम और जल आदि मे सम्पन्न अर्थात् परिपूर्णा हो। उसके मध्य मे जल वृक्ष पुष्पादिक सब प्रकार से रक्षित सब श्रुतियों में सुखकारक श्वेतवर्ण अपने लिये घर जिममें सब राजकार्य का निर्वाह हो बैसा बनवावे। इतना अर्थात् ब्रह्मचर्य से विद्या पढ के यहाँ तक राजकाम करके पश्चात् सौन्दर्य रूप गुणयुक्त

अपने हृदय को अतिप्रिय बड़े उत्तम कुल में उत्पन्न सुन्दर लक्षण-युक्त अपने क्षत्रियकुल की कन्या जो कि अपने सट्टश विद्यादि गुण कर्म स्वभाव में हो उस एक ही स्त्री के साथ विवाह करे दूसरी सत्र बहियों को अगम्य समझ कर दृष्टि से भी न दखे । पुरोहित और ऋत्विज् का स्वीकार इसलिय करे कि वे अग्निहोत्र और पक्षेष्टि आदि सत्र राजघर के कर्म किया करें और आप सर्वदा राजकार्य में तत्पर रह अर्थात् यहां राजा का सन्ध्योपासनादि कर्म है जो रात दिन राजकार्य में प्रवृत्त रहना और कोई राजकाम विगडने न दना ।

सत्यधर्मपरीक्षा

जो पुण्य (अर्थ) सुख्यादि रत्न और (काम) में नहीं फँसते हैं वन्हीं को धर्म का ज्ञान प्राप्त होता है जो धर्म के ज्ञान की इच्छा करें वे वेद द्वारा धर्म का निश्चय करें क्योंकि धर्माऽधर्म का निश्चय बिना वेद के ठीक नहीं होता ।

इस प्रकार आचार्य अपने शिष्य को उपदेश करे और विशेष कर राजा इतर क्षत्रिय, वैश्य और उत्तम शूद्र जनों को भी विद्या का अभ्यास अवश्य करावें । क्योंकि जो ब्राह्मण हैं वे ही केवल विद्याभ्यास करें और क्षत्रियादि न करें तो विद्या, धर्म, राज्य और धनादि की वृद्धि कभी नहीं हो सकती । क्योंकि ब्राह्मण तो केवल पढ़ने पढ़ाने और क्षत्रियादि से जीविका को प्राप्त होके जीवन धारण कर सकते हैं । जीविका के आधीन और क्षत्रियादि के आज्ञादाता और यथावत् परीक्षक दण्डदाता न होने से ब्राह्मणादि सब वर्ग पाखण्ड ही में फँस जाते हैं और जब क्षत्रियादि शिथिल होत हैं तब ब्राह्मण भी अधिक विद्याभ्यास और धर्मग्रन्थों का अध्ययन हैं और उन क्षत्रियादि विद्वानों के सामने पाखण्ड कृत् अज्ञान भी नहीं कर सकते और जब क्षत्रियादि शिथिल होते हैं तो वे जैसा अपने मन में आता है वैसा ही करते करते हैं । अतएव ब्राह्मण भी अपना कल्याण प्राप्त की इच्छा रखें और वेदों का शास्त्र का अभ्यास अधिक प्रयत्न करें और वेदों का ही विद्या, धर्म, राज्य और धन ही प्राप्त करें ।

मितावृत्ति नहीं करते इत्यादि हैं

। जब सब वर्गों में

भी पाण्डुरूप अर्मयुक्त मिथ्याव्यवहार को नहीं चला मरता इससे क्या मिठ हुआ कि क्षत्रियादि को नियम में चलाने वाले ब्राह्मण और सन्यासी तथा ब्राह्मण और सन्यासी को सुनियम में चलाने वाले क्षत्रियादि होत है । इमलिये सब वर्णों के स्त्री पुरुषों में विद्या और धर्म का प्रचार अवश्य होना चाहिये । अब जो २ पढ़ना पढ़ाना हो वह वह अच्छे प्रकार परीक्षा करके होना योग्य है—परीक्षा पाँच प्रकार से होती है । एक-जो २ ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव और वेदों से अनुकूल हो वह २ सत्य और उससे विरुद्ध असत्य है । दूसरी जो २ सृष्टि क्रम से अनुकूल वह २ सत्य और जो २ सृष्टिक्रम से विरुद्ध है वह सब असत्य है । तीसरा—“आप्त” अथत् जो धार्मिक विद्वान्, सत्यवादी, निरूपटियों का सग उपदेश के अनुकूल है। वह २ प्राह्य और जो २ विरुद्ध वह २ अप्राह्य है । चौथी—अपने अत्मा को पवित्रता विद्या के अनुकूल अर्थात् जैसा अपन को सुख प्रिय और दुःख अप्रिय है वैसे ही सर्वत्र समझ लेना कि मैं भी किसी को दुःख वा सुख दूँगा तो वह भी अप्रसन्न और प्रसन्न होगा । और पाँचवा—आठों प्रमाण अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव

जो श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा और घ्राणका शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध के साथ अन्यवहित अर्थात् आवरण रहित सम्बन्ध होता है, इन्द्रियों के साथ मन का और मन के साथ आत्माके सयोग, से ज्ञान उत्पन्न होता है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं परन्तु जो व्यपदेश अर्थात् सक्षासही के सम्बन्ध से उत्पन्न होता है वह ज्ञान न हो। जैसा किसी

नदी व प्रवाह की बटनी दग व ऊपर हुई धारा का, पुत्र को दस क पिता का, सृष्टि को दग व अनादि कारण का तथा कर्ता ईश्वर का और पाप पुण्य व आचरण दग व सुख दुःख का ज्ञान होता है इसी को 'शेखरम्' कहते हैं। तीसरा "भागान्यतोदृष्ट" जो कोई किसी का फायदा कारण न हो परन्तु किसी प्रकार का साधर्म्य एक दूसरे व साथ हो जैसे कोई भी बिना धने दूसरे स्थान को नहीं प्राप्त करता वैसे ही दूसरों का भी स्थानान्तर में जाना बिना गमन व कभी नहीं हो सकता। अनुमान शब्द का अर्थ यही है कि "अनु अथात् प्रत्यक्षस्य पश्चान्मीयते ज्ञायत येन तदनुमानम्" जो प्रत्यक्ष व पश्चात् उत्पन्न जैसे धूम व प्रत्यक्ष अग्नि का ज्ञान कभी नहीं हो सकता।

जो प्रसिद्ध प्रत्यक्ष साधर्म्य में साध्य अथात् सिद्ध करने योग्य ज्ञान का सिद्धि करने का साधन हो उसको उपमान कहते हैं। "उपमीयत येन तदुपमानम्" जैसे किसी ने किसी मृत्यु से कहा कि "तू विष्णुमित्र की बुलाला" वह बोला कि "मैंने उसको कभी नहीं देखा" उसका स्वामी ने कहा कि "जैसा यह देवदत्त है वसा ही वह विष्णुमित्र है" वा जैसा यह गाय है वैसे ही गवय अर्थात् नीलगाय होती है, जब वह वहाँ गया और देवदत्त के सदृश उसको देख निश्चय कर लिया कि यही विष्णुमित्र है उसको ले आया। अथवा किसी जङ्गल में जिस पशु को गाय के तुल्य दृष्टा उसको निश्चय कर लिया कि इसी का नाम गवय है।

जो आत अथान् पूर्ण विद्वान्, धर्मात्मा, परोपकारप्रिय,

स्वप्नादी, पुरुषार्थी, जितन्द्रिय पुरुष जैसा अपने आत्मा में जानना हो और जिससे सुर पाया हो उसी के कथन की इच्छा से प्रेरित सब मनुष्यों के कल्याणार्थ उपदेश हो अर्थात् [जो] जितने प्रथिवी से लेके परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों का ज्ञान प्राप्त होकर उपदेश होता है। जो ऐसे पुरुष और पूर्ण प्राप्त परमेश्वर के उपदेश वेद हैं वन्हीं को शब्द प्रमाणा जानो।

जो इतिहास अर्थात् इस प्रकार का था उसने इस प्रकार किया अर्थात् किसी के जीवन चरित्र का नाम ऐतिहास है।

जैसे किसी ने किसी से कहा कि "बदल के होने से वर्षा और कारणा के होने से कार्य उत्पन्न होता है" इससे बिना कहे यह दूसरी बात सिद्ध होती है कि बिना बदल वर्षा और बिना कारणा के कार्य कभी नहीं हो सकता।

कोई कहे कि "माता पिता के बिना सन्नानोत्पत्ति, किसी ने मृतक जिलाये, पहाड उठाये, समुद्र में पत्थर तराये, चन्द्रमा के टुकड़े किये, मनुष्य के सींग दखे और बन्ध्या के पुत्र और पुत्री का विवाह किया" इत्यादि सब असम्भव हैं क्यों कि ये सब बातें सृष्टिक्रम से विरुद्ध हैं। और जो बात सृष्टिक्रम के अनुकूल हो वही सम्भव है।

जैसे किसी ने किसी से कहा कि "हाथी ले आ' वह हाथी का अभाव देखकर जहाँ हाथी था वहाँ से ले आया। ये प्रमाणा हैं। इनमें से जो शब्द से ऐतिहास और अनुमान में अभाव की गणना करें तो चार प्रमाणा

इन पाच प्रकार की परीक्षाओं से सत्यासत्य का निश्चय मनुष्य कर सकता है अन्यथा नहीं ।

जब मनुष्य धर्म का यथायोग्य अनुष्ठान करने से पवित्र होकर 'साग्रम्यं' अर्थात् जो तुल्य धर्म है जैसा पृथिवी जड़ और जल भी जड़ "द्वैधर्म्यं" अर्थात् पृथिवी कठोर और जल कोमल इसी प्रकार से द्रव्य, गुण, कम, सामान्य, विशेष और समवाय इन छः पदार्थों के तत्त्वज्ञान से अर्थात् स्वरूपज्ञान से "निश्चेयसम्" मोक्ष को प्राप्त होता है ।



प्रभाकर परीक्षा की सहायक पुस्तकें

प्रबोध-प्रभाकर

(दूसरा संस्करण)

[ले०—श्री गुलामराय प० प०]

इस पुस्तक में १६२४ से लेकर अब तक के प्रभाकर परीक्षा में आये हुए निबन्ध दिए गये हैं। साथ ही कुछ अन्य माडिस्टिक लेख भी जोड़ दिये गये हैं। निबन्धों की भाषा, सरल होने पर भी परिष्कृत है, जो कि विद्यार्थियों के लिए आदर्श कही जा सकती है। मू० १।।।।)

मुद्राराक्षस नाटक सटिप्पण

(स०—श्री धर्मचन्द्र विशारद)

(तीसरा संस्करण)

विद्यार्थी उपयोगी सुसंपादित संस्करण। इसमें सब पद्यों के अर्थ, नाटक के पात्रों का परिचय, नाटक की आलोचना, नाटक सम्बन्धी परिभाषाएँ, भारतन्दु हरिश्चन्द्र की विस्तृत जीवनी तथा उनकी अन्य रचनाओं का सक्षिप्त परिचय भी दिया गया है। विद्यार्थियों के लिए यह सर्वोत्तम संस्करण है। इसके लेन पर अन्य किसी सहायक पुस्तक की आवश्यकता नहीं रहती। पुस्तक लेने समय श्री धर्मचन्द्र विशारद का नाम दस लें। मूल्य पचस ।

हिन्दी भवन, लाहौर

प्रभाकर परीक्षा की सहायक पुस्तकें

प्राचीन गद्य की कुजी

इसमें प्राचीन गद्य में दिये गये गद्य लेखों के कठिन शब्दों का अर्थ प्रत्येक लेखक की लेखन शैली पर विचार तथा उसका साहित्य में स्थान बड़े विस्तार से दर्शाया गया है। शुद्धता, तथा स्पष्टता के लिए हिन्दी भवन लाहौर का नाम ही पर्याप्त है। मूल्य ॥१॥)

नवनिधि की कुजी

(लेखक—श्री शंभुदयाल सकतेना साहित्यरत्न)

इसमें नवनिधि के सत्र पद्यों के कठिन शब्दों के अर्थ बड़ी सरल भाषा में विस्तार पूर्वक दिये गये हैं। प्रसंगवश आने वाली कहानियाँ तथा कवियों की शैली पर आलोचनात्मक विचार देकर विद्वान लेखक ने पुस्तक की महत्ता बढ़ा दी है। श्री शंभुदयाल जी कुजियाँ लिखने में अपना सानी नहीं रखते। उनकी लिखी यह कुजी शुद्धता, स्पष्टता आदि में अद्वितीय है। मूल्य ॥३॥

प्रभाकर प्रश्नपत्र आदर्श उत्तर सहित

[स० देवचन्द्र विशारद]

इसमें सन् १९३४ से आजतक के प्रश्न संगृहीत हैं। विद्यार्थियों की सुविधा के लिए १९३६ से आजतक के प्रश्न के उत्तर भी दिए गए हैं। उत्तर प्रामाणिक हैं। मूल्य २॥१॥

हिन्दी भवन, लाहौर

प्रभाकर परीक्षा की सहायक पुस्तके

आलोचना-समुच्चय

(हेरक—श्री रामकृष्ण शुक्ल एम ए 'शिखीमुख')

प्रोपेंसर, महाराजा कॉलेज, जयपुर)

इसमें विद्वाने दोखक न हिन्दी के प्रायः सत्र प्रमुख महाकवियों—
कबीर, सूर, जायसी, तुलसी, मीरा, केशव, बिहारी, भूपण
हरिश्चन्द्र, मैथिलीशरण और प्रसाद—पर गभीर आलोचनात्मक
निबन्ध लिखे हैं, जिनमें कवियों के काव्य, और उनकी विशेषताओं
पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है, तथा कवियों की मनोवैज्ञानिक
प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया गया है। विश्वविद्यालयों की
उच्च कक्षा के विद्यार्थियों, विशेषतः प्रभाकर के परीक्षार्थियों के
लिए आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य पुस्तक। पृष्ठ २६०—
मूल्य २)

छन्द-रत्नावली की कुजी

इसमें छन्द रत्नावली में आए सब छन्दों को सरल और सुबोध
भाषा में समझाया गया है। मूल्य १/२) मात्र।

हिंदी